श्री आचारांग सूत्रम्

हिन्दी पद्यमय भावानुवाद

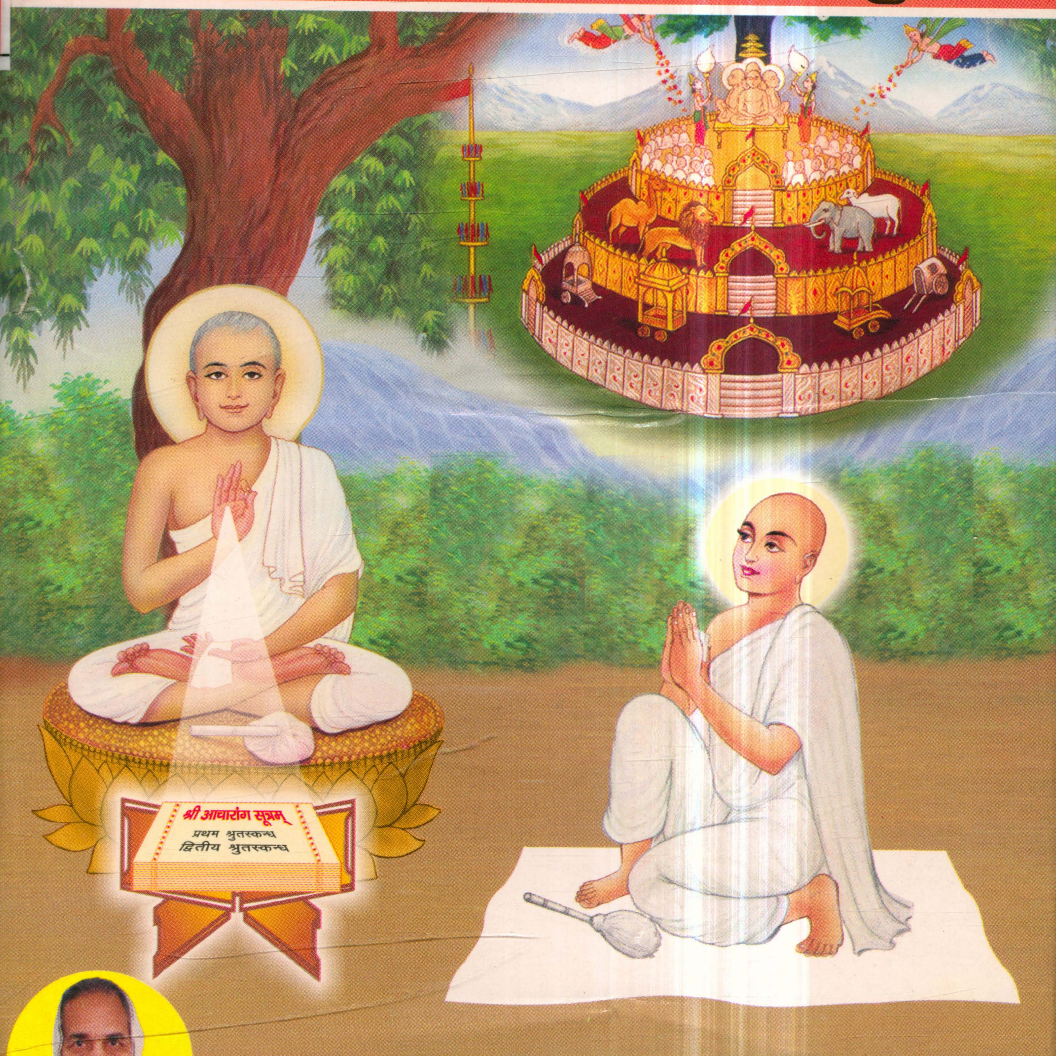

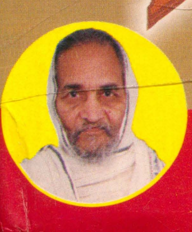

रचयिता– आचार्य विजय सुशील सूरि.

मुखपृष्ठ चित्र परिचय

भगवान महावीर के पश्चात् श्री सुधर्मा स्वामी भगवान के पाट पर विराजमान हुए। चित्र में दिखाया गया है कि श्री जम्बू स्वामी पृच्छा कर रहे हैं और श्री सुधर्मा स्वामी उनको उपदेश दे रहे हैं। मुखपृष्ठ पर ऊपर की तरफ समवसरण दिखाया गया है। यह अरिहंत भगवान की प्रवचन सभा कहलाती है। छोटे-बड़े सभी प्राणी बिना किसी भेदभाव के यहाँ आकर भगवान की देशना सुनते हैं। इस अलौकिक प्रवचन सभा का निर्माण देवताओं के द्वारा किया जाता है। इस देव निर्मित समवसरण में तीर्थंकर भगवान प्रथम प्रहर में पूर्व द्वार से प्रवेश करते हैं और अशोक वृक्ष के नीचे पूर्व दिशा में मुख करके सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। उस समय देवगण तीनों दिशाओं में भगवान के जैसे ही तीन प्रतिबिम्बों की रचना करते हैं जिससे चारों तरफ बैठे प्राणियों को भगवान के एक समान दर्शन हो सकें। इस समवसरण के तीन गढ़ होते हैं। पहले गढ़ में केवली, मनःपर्यव ज्ञानी, लब्धिधारी तथा सामान्य श्रमण-श्रमणियाँ, देव-देवियाँ बैठते हैं। दूसरे गढ़ में पशु-पक्षी गण आकर बैठते हैं। तीसरे गढ़ में देवताओं तथा मनुष्यों के वाहनों के ठहरने की व्यवस्था होती है। समवसरण के बाहर चारों दिशाओं में बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ फहराती हैं।

पुस्तक में दिये गये चित्रों की एक झलक

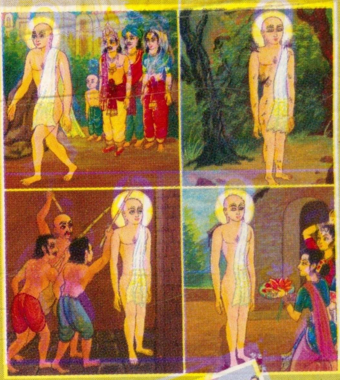

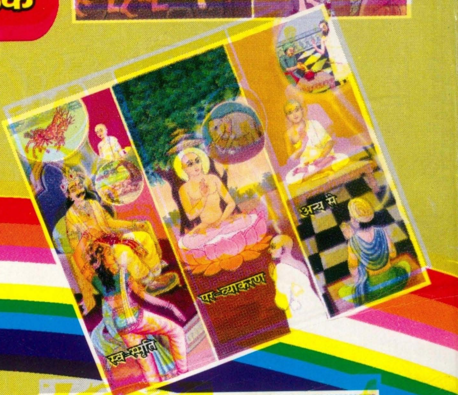

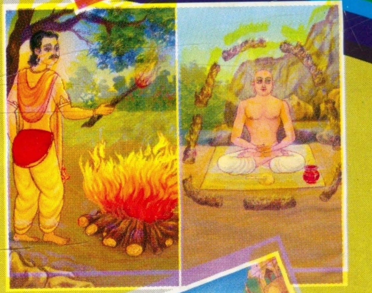

श्री आचारांग सूत्रम्

हिन्दी पद्यमय भावानुवाद

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

卐 ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ नमः 卐 ४२०४

श्रुतकेवली पंचम गणधर
श्री सुधर्मास्वामी जी द्वारा विरचित

श्री आचारांग सूत्रम्

प्रथम श्रुतस्कन्ध का
हिन्दी पद्यमय भावानुवाद (सचित्र)

रचयिता

प्रतिष्ठा शिरोमणि-गच्छाधिपति-जन जन के श्रद्धा केन्द्र
प. पू. आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी म. सा.

संपादन

श्री सुशील गुरुकृपा प्राप्त-प्रतिष्ठाचार्य
प. पू. आचार्य देव
श्रीमद् विजय जिनोत्तम सूरीश्वर जी म. सा.

प्रकाशन सहयोग

- श्री विशारता पद्नम् जैन संघ, श्राविका ब्हेनों
- श्री विजयवाड़ा जैन संघ, श्राविका वहेनों
- शा. समरामिल एण्ड कं. विजयवाड़ा, श्री कुन्थुनाथ गृह मन्दिर
- श्रीमती विमला ब्हेन-छगनलाल जी जावाल, विजयवाड़ा
- श्री नेल्लोर जैन संघ, श्राविका ब्हेनों।

प्रकाशक

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर

पुस्तक : **श्री आचारांग सूत्रम्** (हिन्दी पद्यमय भावानुवाद)

रचयिता : प. पू. आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी म. सा.

संपादक : प. पू. आचार्य देव
श्रीमद् विजय जिनोत्तम सूरीश्वर जी म. सा.

प्रेरक : पू. मुनिराज श्री रत्नशेखर विजय जी म.
पू. मुनिराज श्री रविचन्द्र विजय जी म.
पू. मुनिराज श्री हेमरत्न विजय जी म.
पू. मुनिराज श्री जिनरत्न विजय जी म.

प्रकाशक : श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर

प्रतियाँ : 2000

प्रथमावृति : श्री वीर सं. 2534, श्री विक्रम सं. 2064,
श्री नेमि सं. 59, श्री लावण्य सं. 46

मूल्य : 61/- रूपये (ज्ञान खाता में अर्पण करें।)

प्राप्ति-स्थान

- **श्री अष्टापद जैन तीर्थ**
  सुशील विहार, वरकाणा रोड, पो. रानी, जि. पाली-306 115 (राज.)
  Ph. : (02934) 222715, Fax : 02934-223454
- **श्री अरिहंत धाम जैन श्वेताम्बर ट्रस्ट, विजयवाड़ा**
  C/o, Sri Sambhavanath Jain Swetamber Murti Pujak Sangh
  Jain Temple Street, Apo. : Vijaywada-520 001 (A.P.) Tel. : (0866) 2425521
- **श्री जैन शासन सेवा ट्रस्ट** C/o, SHAH DEVRAJ JI JAIN
  125, Mahaveer Nagar, PALI-306 401 (Rajasthan)
  Tel. : Off & Fax : (02932) 231667, Resi. : 230146, Mobile : 94141-19667
- **श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति**
  C/o, संघवी श्री गुणदयालचंद जी भंडारी
  राइका बाग, पुरानी पुलिस लाइन, पो. जोधपुर-342 006 (राज.)
  Ph. : (0291) 2511829, 2510621, Fax : 2511674
- **श्री सुशील गुरु भक्त मंडल, मुम्बई,**
  C/o, SHAH JUGRAJJI DANMALJI SHRISHRIMAL
  C/o, S. K. & Co. 51/53, New Hanuman Lane, Maru Bhawan, Mumbai-400 002 (M.H.)
  Ph. : 022 (O) 22015157, (R) 23712546, M. : 9323312546

समर्पण

वन्दन है अभिनन्दन प्रतिपल,
जिनवर ! गुरूवर ! कृपानिधान।
बलिहारी गुरुचरण-शरण का,
जिनपथ-दर्शन-ज्योति महान।।
उपकृत है तन, मन, विद्या-धन,
संयम की चादर सुकुमार।
'गुरु सुशील' की परम कृपा से,
उनको अर्पित यह उपहार

चरण चञ्चरीक
विजय जिनोत्तम सूरि.

सद् गुरु वन्दना

शासन के सम्राट् अलौकिक, दिव्य गुणों के अनुपम धाम ।
तीर्थोद्धार धुरंधर गुरुवर, **नेमि सूरीश्वर** तुम्हें प्रणाम ।।

साहित्य सुधा सम्राट् सुपावन, काव्य कला मन्दिर अभिराम ।
अग जग में जगमग है गुरुवर, **लावण्य सूरीश्वर** तुम्हें प्रणाम ।।

संयम के सम्राट् कलाधर, गुणगरिमा युक्त सार्थक नाम ।
अमल कमल से शोभित गुरुवर, **दक्ष सूरीश्वर** तुम्हें प्रणाम ।।

जैनधर्म के दिव्य दिवाकर, सरस्वती के पावन धाम ।
कवि भूषण तीर्थ प्रभावक, **सुशील सूरीश्वर** तुम्हें प्रणाम ।।

प्रतिष्ठा शिरोमणि धर्म रक्षक, साहित्य के सर्जक महा ।
आचार्य विजय **सुशील सूरीश्वर** महाराज अहा ।।

गुरु **नेमि** की तेजस्विता, **लावण्य दक्ष**-सुदक्षता ।
साहित्य में लसती, **जिनोत्तम भक्ति** धारा स्वच्छता ।।

।। वन्दन हो गुरू चरणे ।।

साहित्य सम्राट्

प. पू. आचार्य देवेश श्रीमद्
विजय लावण्य सूरीश्वर जी म. सा.

शासन सम्राट

परम पूज्य आचार्य
महाराजाधिराज श्रीमद् विजय
नेमि सूरीश्वर जी म.सा.

संयम सम्राट्

प. पू. आचार्य प्रवर श्रीमद्
विजय दक्ष सूरीश्वर जी म. सा.

प्रतिष्ठा शिरोमणि
गच्छाधिपति

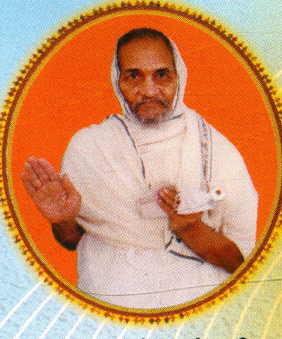

प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद्
विजय सुशील सूरीश्वर जी म. सा.

श्री सुशील
गुरू कृपा प्राप्त

प. पू. आचार्य देव श्रीमद्
विजय जिनोत्तम सूरीश्वर जी म. सा.

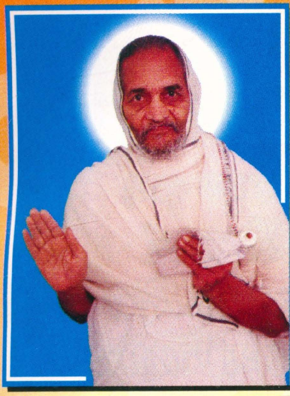

प. पू. शासन सम्राट् समुदाय के वडिल – गच्छाधिपति
प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा.

जीवन परिचय

जन्म	: वि. सं. 1973, भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, 28 सितम्बर 1917 चाणस्मा (उत्तर गुजरात)
माता	: श्रीमती चंचल बेन मेहता
पिता	: श्री चतुरभाई मेहता
नाम	: गोदड़भाई
परिवार गोत्र	: चौहाण गोत्र वीशा श्रीमाली
संयमी परिवार	: पिताजी व दो भाई एवं एक बहन ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की
दीक्षा	: वि. सं. 1988, कार्तिक (मार्गशीर्ष) कृष्णा 2, दिनांक 27 नवम्बर 1931, श्री पद्मनाभ स्वामी जैन तीर्थ, उदयपुर (राज.)
दीक्षा नाम	: पू. मुनि श्री सुशील विजय जी म. सा.
बड़ी दीक्षा	: वि. सं. 1988, महासुदी पंचमी, सेरिसा तीर्थ (गुजरात)
गणिपदवी	: वि. सं. 2007, कार्तिक (मार्गशीर्ष) कृष्णा 6, दिनांक 1 दिसम्बर 1950, वेरावल (गुजरात)
पंन्यास पदवी	: वि. सं. 2007, वैशाख शुक्ला 3, दिनांक 6 मई 1951, अहमदाबाद (गुजरात)
उपाध्याय पद	: वि. सं. 2021, माघ शुक्ला 3, दिनांक 4 फरवरी 1965, मुंडारा (राजस्थान)
आचार्य पद	: वि. सं. 2021, माघ शुक्ला 5 दिनांक 6 फरवरी 1965 मुंडारा (राजस्थान)
कालधर्म	: वि. सं. 2061, आसोज सुदि–8 मंगलवार, 11 अक्टूबर 2005 चिकपेट, बेंगलोर
साहित्य-सर्जन	: करीब 150 ग्रंथ पुस्तकों का लेखन, पुस्तकों का अनुवाद, ग्रन्थों का सम्पादन
प्रतिष्ठाएँ	: 188 से अधिक जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएँ व अंजनशलाकाएँ (वि. सं. 2021 से वि. सं. 2061 तक)
जैन तीर्थ निर्माता	: श्री अष्टापद जैन तीर्थ—सुशील विहार, रानी (राजस्थान)
अलंकरण	: जैन धर्म दिवाकर, मरूधरदेशोद्धारक—राजस्थान दीपक—तीर्थप्रभावक शासनरत्न—श्री जैन शासन शणगार—जैन शासन शिरोमणि शास्त्र विशारद—साहित्यरत्न—कवि भूषण—प्रतिष्ठा शिरोमणि।
जैन शासन शिरोमणि	: वि. सं. 2055, पाली शहर में
पट्ट परम्परा	: श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी परमात्मा के पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी महाराज की सुविहित परम्परा

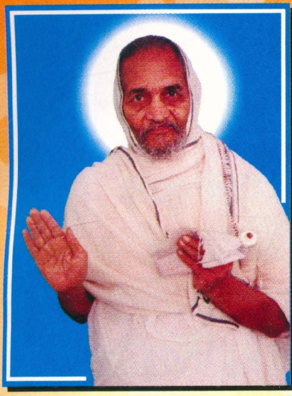

प. पू. शासन सम्राट् समुदाय के वडिल – गच्छाधिपति प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा.

जीवन परिचय

जन्म : वि. सं. 1973, भाद्रपद शुक्ला द्वादशी,
28 सितम्बर 1917 चाणस्मा (उत्तर गुजरात)

माता : श्रीमती चंचल बेन मेहता

पिता : श्री चतुरभाई मेहता

नाम : गोदड़भाई

परिवार गोत्र : चौहाण गोत्र वीशा श्रीमाली

संयमी परिवार : पिताजी व दो भाई एवं एक बहन ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की

दीक्षा : वि. सं. 1988, कार्तिक (मार्गशीर्ष) कृष्णा 2, दिनांक 27 नवम्बर 1931,
श्री पद्मनाभ स्वामी जैन तीर्थ, उदयपुर (राज.)

दीक्षा नाम : पू. मुनि श्री सुशील विजय जी म. सा.

बड़ी दीक्षा : वि. सं. 1988, महासुदी पंचमी, सेरिसा तीर्थ (गुजरात)

गणिपदवी : वि. सं. 2007, कार्तिक (मार्गशीर्ष) कृष्णा 6,
दिनांक 1 दिसम्बर 1950, वेरावल (गुजरात)

पंन्यास पदवी : वि. सं. 2007, वैशाख शुक्ला 3, दिनांक 6 मई 1951, अहमदाबाद (गुजरात)

उपाध्याय पद : वि. सं. 2021, माघ शुक्ला 3, दिनांक 4 फरवरी 1965, मुंडारा (राजस्थान)

आचार्य पद : वि. सं. 2021, माघ शुक्ला 5 दिनांक 6 फरवरी 1965 मुंडारा (राजस्थान)

कालधर्म : वि. सं. 2061, आसोज सुदि–8 मंगलवार, 11 अक्टूबर 2005 चिकपेट, बेंगलोर

साहित्य-सर्जन : करीब 150 ग्रंथ पुस्तकों का लेखन, पुस्तकों का अनुवाद, ग्रन्थों का सम्पादन

प्रतिष्ठाएँ : 188 से अधिक जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएँ व अंजनशलाकाएँ
(वि. सं. 2021 से वि. सं. 2061 तक)

जैन तीर्थ निर्माता : श्री अष्टापद जैन तीर्थ—सुशील विहार, रानी (राजस्थान)

अलंकरण : जैन धर्म दिवाकर, मरूधरदेशोद्धारक—राजस्थान दीपक—तीर्थप्रभावक
शासनरत्न—श्री जैन शासन शणगार—जैन शासन शिरोमणि
शास्त्र विशारद—साहित्यरत्न—कवि भूषण—प्रतिष्ठा शिरोमणि।

जैन शासन शिरोमणि : वि. सं. 2055, पाली शहर में

पट्ट परम्परा : श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी परमात्मा के पंचम गणधर
श्री सुधर्मा स्वामी जी महाराज की सुविहित परम्परा

श्री सुशील गुरु कृपा
प्राप्त प्रतिष्ठाचार्य
प. पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय जिनोत्तम
सूरीश्वरजी म. सा.

मिताक्षरी परिचय

- माता : श्री दाड़मी बाई (वर्तमान में साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञाश्री जी)
- पिता : श्री उत्तमचन्दजी अमीचन्दजी मरड़ीया (प्राग्वाट)
- जन्म : जावाल सं. 2018, चैत्र वद-6, शनिवार, 27 मार्च, 1962
- सांसारिक नाम : जयन्तीलाल
- श्रमण नाम : पू. मुनिराज श्री जिनोत्तम विजय जी म.
- गुरुदेव : प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी म. सा.
- दीक्षा : जावाल सं. 2028, ज्येष्ठ वद-5, रविवार 15 मई, 1971
- बड़ी दीक्षा : उदयपुर सं. 2028 आषाढ़ शुक्ल-10
- गणि पद : सोजत सिटी सं. 2046, मिगशर शुक्ल-6, सोमवार, 4 दिसम्बर 1986
- पंन्यास पद : जावाल सं. 2046, ज्येष्ठ शुक्ल-10, शनिवार, 2 जून 1990
- उपाध्याय पद : कोसेलाव वि.सं. 2053, मृगशीर्ष वद-2, बुधवार, 27 नवम्बर, 1996
- आचार्य पद : लाटाडा वि. सं. 2053 वैशाख शुक्ल-6, 12 मई 1997

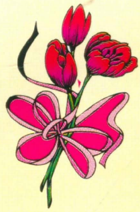

परिवार में दीक्षित–

दादा–पू. मुनिश्री अरिहंत विजय जी म., दादी–पू. साध्वी श्री भाग्यलताश्री जी म.
माता–पू. साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञाश्री जी म., भुआ–पू. साध्वी श्री स्नेहलताश्री जी म.
भुआ–पू. साध्वी श्री भव्यगुणाश्री जी म.

प्रकाशकीय

श्री आचाराङ्ग सूत्र का पद्यमय भावानुवाद को प्रकाशित करते हुए हम गौरवान्वित हैं।

प्रस्तुत महननीय ग्रन्थ, स्वर्गीय शासन सम्राट् सूरिचक्र चक्रवर्ती-तपोगच्छाधिपति-भारतीय भव्य विभूति-अखण्ड ब्रह्मतेजो मूर्ति-महाप्रभावक प्रतिभाशाली जंगम युग प्रधान, कल्प वचन सिद्ध महापुरुष परमपूज्य परम गुरुदेव **आचार्य महाराजाधिराज श्रीमद् विजय नेमिसूरीश्वर जी महाराज** के दिव्य पट्टालकार-साहित्य सम्राट् व्याकरण वाचस्पति-शास्त्र विशारद-कविरत्न-परमपूज्य-प्रगुरुदेव **आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय लावण्य सूरीश्वर जी महाराज** के प्रधान पट्टधर संयम सम्राट-शास्त्र विशारद-कवि दिवाकर व्याकरणरत्न-परमपूज्य गुरुदेव **आचार्यवर्य श्रीमद् विजय दक्ष सूरीश्वर जी महाराज** के सुप्रसिद्ध पट्टधर प्रतिष्ठा शिरोमणि, गच्छाधिपति-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न कविभूषण पूज्य पादगुरु **देव आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी म. सा.** ने सरल सरस हिन्दी पद्य में लिखा है।

आचारांग सूत्र जैन दर्शन का आधारभूत शास्त्र है तथा ग्यारह अंगों में प्रथम अंग है। आचारांग सूत्र के इस पद्यमय भावानुवाद का पठन-पाठन कर श्रमण-श्रमणी व श्रावकगण अपने जीवन में अहिंसा और संयम का पालन कर संवर भावना से भावित होंगे, प्रभु वाणी को हृदयांगम कर अपना जीवन सफल करेंगे।

इस कृति में रंगीन भावपूर्ण सुन्दर चित्रों के माध्यम से गम्भीर विषयों को सरल तरीके से समझाने का प्रयास किया गया है।

हम जैसे अल्पज्ञ, कुछ अधिक लिखने की स्थिति में नहीं हैं। प्रस्तुत प्रणयन को सुविज्ञ पाठकों के लिए प्रकाशित करते हुए हम आपने आपको कृतार्थ मानते हैं तथा पूर्ण श्रद्धा भक्ति एवं समर्पण भाव के साथ, प्रस्तुत ग्रन्थरत्न को एवं श्री गुरुचरणों में भाव-वंदना करते हैं।

प. पू. आचार्यदेव श्री जिनोत्तम सूरीश्वर जी म. सा. के प्रति भी कृतज्ञ हैं क्योंकि उनके मार्गदर्शन, संपादन बिना शायद इस महान कार्य का प्रकाशन सम्भव नहीं होता।

इस पुस्तक की सुन्दर साज-सज्जा, मुद्रण आदि में '**श्री दिवाकर प्रकाशन**' आगरा के **श्री संजय सुराना** ने भी अपनी कलात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। एतदर्थ उन्हें भी धन्यवाद।

—प्रकाशक

श्री सुशील साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर

ट्रस्ट मंडल

संघवी श्री गुणदयालचंद जी भंडारी,	*जोधपुर (राज.)*
शा. गणेशमल हस्तिमल जी मुठलिया,	*तखतगढ़ (मुम्बई)*
संघवी प्रकाशचन्द्र गेनमल जी मरडीया,	*जावाल (चेन्नई)*
शा. नैनमल जी विनयचंद्र जी सुराणा,	*सिरोही (मुम्बई)*
शा. मांगीलाल जी तातेड,	*मेड़ता सिटी (चेन्नई)*
शा. देवराज जी दीपचंद जी राठौड़,	*जवाली (पाली)*
शा. रमणीकलाल मिलापचंद जी,	*नोवी (सूरत)*
शा. गनपतराज जी चौपड़ा,	*पचपदरा (मुम्बई)*
शा. सुखपालचंद जी भंडारी,	*जोधपुर (राज.)*

आत्म निवेदनम्

आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर **श्रमण भगवान महावीर स्वामी** ने देव विरचित समवसरण में इन्द्रभूति आदि एकादश समर्थ विद्वानों को अपने-अपने शिष्य परिवार सहित वेदपदों का सत्यार्थ समझा तथा जैन भागवती दीक्षा प्रदान की। उस समय धर्म तीर्थ की स्थापना करते हुए **भगवान महावीर स्वामी** ने उन एकादश विद्वानों को गणधर के उत्कृष्ट पदवी से अलंकृत करते हुए जैनागम दर्शन के मौलिक सिद्धान्त उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूपी त्रिपदी का सविधि सार्थक रहस्य भी समझाया।

अनुपम त्रिपदी को का आत्मसात् करते पूज्य गणधरों ने अद्‌भुत **द्वादशाङ्गी** की रचना की। उसमें सर्वप्रथम चौदहपूर्व की रचना हुई। चौदह पूर्व के समूह को पूर्वगत कहते हैं।

द्वादशाङ्गी के बारह अंगों में से एक अङ्ग दृष्टिपाद (दिट्ठिवाए) प्राय: पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व ही विच्छिन्न हो गया। सम्प्रति एकादश अङ्ग सूत्र ही प्राप्त होते हैं—

1. आचारांग सूत्र
2. सूत्रकृतांग सूत्र
3. स्थानाङ्ग सूत्र
4. समवायाङ्ग सूत्र
5. व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र
6. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र
7. उपासकदर्शाङ्ग सूत्र
8. अन्तकृताङ्ग सूत्र
9. अनुत्तरोपपात्तिकदशा सूत्र
10. प्रश्नव्याकरण सूत्र
11. विपाक सूत्र।

सुविदित है कि **आचारांग सूत्र** पैंतालीस आगम सूत्रों में सर्वप्रथम परिगणित है। वस्तुत: यह प्रथम अंग स्वरूप आगम है। इसके अनेक नाम प्रचलित हैं। जैसे—निर्युक्तिकार **श्री भद्रबाहु स्वामी** जी ने इस सूत्र के अलग-अलग 10 नाम बताये हैं—(1) आचारा, (2) आचाल, (3) आगाल, (4) आकार, (5) आश्वास, (6) आदर्श, (7) अंग, (8) आचीर्ण, (9) आजाति, (10) आमोज्ञ। फिर भी आचारांग के नाम से ही इसे सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त है। इसमें श्रमण-जीवन के आचारों का विस्तृत वर्णन, श्रमण भगवान महावीर

स्वामी का संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रमुखत चरणकरणानुयोग तथा गोणत: अन्य तीनों अनुयोगों का वर्णन प्राप्त होता है। इस महनीय आगम में कुल 2,554 गाथाएँ (श्लोक) हैं।

आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कंध में नौ अध्ययन हैं—

(1) प्रथम **शस्त्रपरिज्ञा** नामक अध्ययन में सात उद्देशक हैं, जिनमें क्रमश: दिशा का पृथ्वी काय का, उप्काय (जलकाय) का, अग्निकाय का, वनस्पति काय का, त्रसकाय का तथा वायुकाय का वर्णन है।

(2) आचाराङ्ग सूत्र के **द्वितीय श्रुतस्कंध** नामक विभाग में सोलह अध्ययन हैं, जिनमें वर्णित विषय संक्षेपत: इस प्रकार है—

1. **पिण्डैषणा** नामक अध्ययन में आहार ग्रहण करने की विधि का वर्णन है।
2. **शय्यैषणा** नामक दूसरे अध्ययन में स्थान ग्रहण करने की विधि का वर्णन है।
3. **ईर्या** नामक तृतीय अध्ययन में ईर्या समिति विधि का वर्णन है।
4. **भाषैषणा** नामक चतुर्थ अध्ययन में भाषा समिति का सार्थक वर्णन है।
5. **वस्त्रैषणा** नामक पञ्चम अध्ययन में वस्त्र ग्रहण करने की विधि का वर्णन है।
6. **पात्रैषणा** नामक षष्ठ अध्ययन में पात्र ग्रहण करने की विधि का विशद वर्णन है।
7. **अवग्रह प्रतिमा** नामक सप्तम अध्ययन में आज्ञा ग्रहण करने की विधि का वर्णन है।
8. **चेष्टिका** नामक अष्टम अध्ययन में खड़े रहने की विधि का वर्णन है।
9. **निषिधिका** नामक नवम अध्ययन में बैठने की सार्थक विधि का वर्णन है।
10. **उच्चार-प्रस्रवण** नामक दशम अध्ययन में लघु नीति, दीर्घ (बड़ी) नीति परठने की विधि का वर्णन है।
11. **शब्द** नामक एकादश अध्ययन में शब्द श्रवण करने की विधि का विशद वर्णन है।

12. **रूप** नामक द्वादश अध्ययन में रूप को देखने की विधि का वर्णन है।
13. **प्रक्रिया** नामक त्रयोदश अध्ययन में गृहस्थ से काम करवाने की विधि का वर्णन है।
14. **अन्योन्य** क्रिया नामक चतुर्दश अध्ययन में परस्पर क्रिया करने की विधि का वर्णन है।
15. **भावना** नामक पञ्चदश अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी के चरित्र तथा पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का वर्णन है।
16. **विमुक्त** नामक षोडश अध्ययन में साधु की उपमाओं का वशद वर्णन है।

(3) **शीतोषणीय** नामक तृतीय अध्ययन के चार उद्देशक हैं। इसमें सुप्त, जागृत, तत्त्वज्ञ-अतत्त्वज्ञ, प्रमाद-त्याग एवं जो एक को जानता है वह सब को जानता है इत्यादि तथ्यों का प्रतिपादन उत्कृष्ट रीति से किया गया है।

(4) **सम्यक्त्व** नामक चौथे अध्ययन में भी चार उद्देशक हैं। इनमें क्रमशः धर्म का मूल-दया, सज्ञान-अज्ञान, सुख प्राप्ति का उपाय एवं मुनि (साधु) के लक्षण का विशद वर्णन है।

(5) **लोक सार** (आवन्ती) नामक पाँचवे अध्ययन में छह उद्देशक हैं, जिनमें बताया गया है कि विषयासक्त मुनि नहीं हो सकता। मुनि तो वही है जो कि सावद्यानुष्ठान का त्यागी हो, कनक-कामिनी का त्यागी हो तथा अव्यक्त साधु अकेला नहीं रहता। ज्ञानी और अज्ञानी का भेद, प्रमादी एवं अप्रमादी में क्या अन्तर है ? इसका निरुपण अत्यन्त सारगर्भित भाषा में सरलता से प्रतिपादित किया गया है।

(6) **धूताख्यान** नामक छठे अध्ययन में पाँच उद्देशक हैं। इनमें कामासक्त के दुःख, रागी-विरागी के सुख-दुःख, ज्ञानी मुनि की दिशा का सुस्थित एवं भ्रष्ट के लक्षण तथा उत्तम साधु के लक्षणों का प्रतिपादन प्रभावी रूप में किया गया है।

(7) **महाप्रज्ञा** नामक सातवाँ अध्ययन विच्छिन्न हो चुका है।

(8) **विमोक्ष** नामक आठवें अध्ययन में आठ उद्देशक हैं जिनमें मतमन्तान्तर साधु अकल्पनीय परित्याग शंका निवारण, वस्त्र परित्याग, भक्त

प्रत्याख्यान इंगित मरण, पादोपगमन-मरण—इन तीन पण्डित मरणों की विधि का स्पष्ट वर्णन किया गया।

(9) **उपधान श्रुत** नामक नौवें अध्ययन के चार उद्देशक हैं, जिनमें सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी के देव दूष्य वस्त्र का, स्थानों का, परिषदों का तथा उनके आचार ध्यान एवं तप आदि का विशद वर्णन है।

आचाराङ्गनाम इस जिनागम सूत्र में मूलतः 18,000 गाथाएँ थीं किन्तु सम्प्रति 2,500 गाथाएँ ही प्राप्त होती हैं। शेष विच्छिन्न हो चुकी हैं।

दीक्षोपरान्त जब मैंने स्वनामधन्य साहित्य सम्राट् **आचार्य श्रीमद्लावण्य सूरीश्वर जी म. सा.** की निश्रा में शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ किया तब पूज्याचार्य जी के मुखारबिन्द से आचाराङ्ग की विशद महिमा का श्रवण करने का मुझे सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ। साहित्य सम्राट् की वाणी का जादू मेरे अन्तस्तल में तत्त्वज्ञान की अनुपम किरणें प्रवाहित करने लगा। मेरी बुद्धि को पूज्य गुरुदेव के तारक चरणों में ज्ञान विज्ञान की विशद चर्चाओं के श्रवण से अनन्त आयाम मिला। मेरी मनीषा निखरती गई। मुझे साधु जीवन एवं मानव जीवन की सार्थकता का सच्चा बोध मिला।

आचाराङ्ग सूत्र पर कुछ लिखने की भावना पहले से ही मेरे मानस में थी। सच तो यह है कि संस्कृत गद्य में इसका आशय स्पष्ट करने की भावना अध्ययन काल में थी किन्तु सम्प्रति हिन्दी भाषा के समुचित विकास को ध्यान में रखकर तथा विषय को सरलता से व्यक्त करने का मुनिजनों का आग्रह मानकर मैंने हिन्दी पद्यानुवाद के माध्यम से अपनी प्राक्कालीन भावना को पूर्ण करने का प्रयास किया है। मेरा यह प्रयत्न, जन-जन के मन में आगम-रहस्य का सरल काव्यात्मक रीति से संचार करने में कितना सार्थक सफल सिद्ध होगा? यह तो ज्ञानीजन ही जान सकते हैं। मैंने तो "**स्वान्तः सुखाय जन हिताय**" यह पद्यात्मक रचना की है।

पद्यमय भावानुवाद करते समय मैंने सावधानी बरतने का पूर्ण प्रयास किया है किन्तु फिर भी छद्मस्थ होने के कारण यदि कहीं लेशमात्र भी जिनागम विरुद्ध लेखन हुआ हो तो तदर्थ "मिच्छामि दुक्कडम्"।

जिनागमोपासक

—आचार्य विजयसुशील सूरि

अनुक्रमणिका

क्या ?		कहाँ
1.	मंगलाचरण	25
2.	श्रीमद् आचारांगसूत्र तस्य	
	प्रथम अध्ययन : शस्त्रपरिज्ञा	27-37
	प्रथम उद्देशक	27
	द्वितीय उद्देशक	30
	तीसरा उद्देशक	33
	चौथा उद्देशक	34
	पाँचवाँ उद्देशक	34
	छठा उद्देशक	35
	सातवाँ उद्देशक	36
2.	दूसरा अध्ययन : लोक विजय	38-65
	प्रथम उद्देशक	38
	द्वितीय उद्देशक	43
	तीसरा उद्देशक	46
	चौथा उद्देशक	51
	पाँचवाँ उद्देशक	54
	छठा उद्देशक	60
3.	तीसरा अध्ययन : शीतोष्णीय	66-81
	प्रथम उद्देशक	66
	द्वितीय उद्देशक	70
	तीसरा उद्देशक	75
	चौथा उद्देशक	79
4.	चौथा अध्ययन : सक्यक्त्व	82-88
	प्रथम उद्देशक	82
	द्वितीय उद्देशक	83
	तीसरा उद्देशक	85
	चौथा उद्देशक	87

5.	**पाँचवाँ अध्ययन : लोकसार**	**89-107**
	प्रथम उद्देशक	89
	द्वितीय उद्देशक	91
	तीसरा उद्देशक	94
	चौथा उद्देशक	96
	पाँचवाँ उद्देशक	101
	छठा उद्देशक	104
6.	**छठा अध्ययन : धुत**	**108-118**
	प्रथम उद्देशक	108
	द्वितीय उद्देशक	112
	तीसरा उद्देशक	115
	चौथा उद्देशक	117
	पाँचवाँ उद्देशक	118
7.	**सातवाँ अध्ययन : महापरिज्ञा**	**119-119**
	पहले से सात उद्देशक	119
8.	**आठवाँ अध्ययन : विमोक्ष**	**119-131**
	प्रथम उद्देशक	119
	द्वितीय उद्देशक	120
	तीसरा उद्देशक	121
	चौथा उद्देशक	122
	छठा उद्देशक	124
	आठवाँ उद्देशक	126
9.	**नवाँ अध्ययन : उपधान श्रुत**	**132-151**
	पहला उद्देशक	132
	दूसरा उद्देशक	137
	तीसरा उद्देशक	142
	चौथा उद्देशक	147
10.	**मंगलमय-प्रशस्ति**	**152**

।।ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं नमः।।

।। चरमतीर्थंकर श्री महावीरस्वामिने नमः।।

।। पंचमगणधर श्री सुधर्मस्वामिने नमः।।

।। शासनसम्राट् श्रीमद्विजयनेमि-लावण्य-दक्ष सूरीश्वरेभ्यो नमः।।

श्रुतकेवली पंचम गणधर श्री सुधर्मस्वामिना
विरचितम्

श्री आचारांगसूत्रम्

तस्योपरि

शासनसम्राट् तपोगच्छाधिपति श्रीमद्विजयनेमि-लावण्य-दक्ष
सूरीश्वराणां पट्टधराचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरिणां
विरचितो हिन्दी पद्यमय भावानुवादः

श्री आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का पद्यमय भावानुवाद

भूमिका

छन्द दोहा

अनन्तानन्तभाव युत, जिनवाणी नमनीय।
अघनाशक भवतारिणी, सुखद शान्त रमणीय।।१।।
जैनागम जय-जय अहो, आत्मशुद्धि सोपान।
जय श्रुत जय बहुश्रुत प्रभो ! अवनीतल भास्वान।।२।।
तिहूँ काल है एक रस, मनहु सुधा-भण्डार।
संतों को है प्राणप्रिय, जिनआगम सुखसार।।३।।
पढ़ो-सुनो-समझो करो, मिटते हैं त्रय ताप।
कट जायेंगे पाप सब, यदि समझेंगे आप।।४।।
जिनवाणी उर में रखो, करो न सोच-विचार।
मुनि '**सुशील**' भवसिंधु से, हो जाओगे पार।।५।।

जिनवाणी भागीरथी

महावीर शिव-शीश से, प्रगटी आगम-गंग।
भूप भगीरथ सम लखी, गणधर वचन-तरंग।।६।।
या कि हिमालय वीर-प्रभु, वाणी गंगा-नीर।
जिसने भी यह जल पिया, खोईं तीनों पीर।।७।।
ब्रह्म-सलिल इसको कहें, आगम-वेद-पुराण।
'**सुशील**' मुनि के मन बसी, बनकर जीवन-प्राण।।८।।
त्रय पथ गामिनि यह नदी, यह जानें सब कोय।
तीन लोक के तीन दुख, हरता वाणी-तोय।।९।।
जय गंगे हर-हर करें, मज्जन करती बार।
'**सुशील**' मुनि जय-जय करे, बसी हृदय श्रुत धार।।१०।।

चतुर्विध देशना

सुरविरचित भगवन्त की, धर्मसभा बेजोड़।
देव-असुर-नर आदि में, सुनने की हो होड़।।११।।

चार विधा की देशना, देते हैं इक साथ।
किसको कैसी देशना, यह श्रोता के हाथ।।१२।।

प्रथम कथा आक्षेप की, जिनपथ का विस्तार।
भव्य लोग हिय में बसे, श्रद्धा से स्वीकार।।१३।।

द्वितीय कथा निक्षेप की, द्वय मत ले पहचान।
पर-मत मिथ्या निरखकर, जिनमत श्रद्धा ठान।।१४।।

तृतीय कथा संवेग रस, धर्मभाव अनुराग।
द्वय भव वांछा परिहरे, जीवन हो बेदाग।।१५।।

अन्त कथा निर्वेद की, सुकर्म या दुष्कर्म।
बिन भोगे नहिं छिन्न हो, करो पाप से शर्म।।१६।।

श्री सम्यक् श्रुत ज्ञान पद, अवनीतल आधार।
मुनि '**सुशील**' भावों सहित, वन्दन बारम्बार।।१७।।

जिनवाणी माहात्म्य

जिनवाणी कलिमल हरण, माँ दुर्गे जगदम्ब।
पाप निशाचर मर्दिनी, पाप हरे अविलम्ब।।१८।।

निष्कारण करुणा करें, महावीर जिनराज।
शान्त सुधारस देशना, फरमाते सरताज।।१९।।

सुर-नर-पशु सुनकर सभी, उन्नत भाव विशेष।
अघहारी जिनवर वचन, मंगलमय उपदेश।।२०।।

जिनवाणी अतिशय अधिक, अमृत रस उपमान।
खेती हो सम्यक्त्व की, फल कैवल्य प्रधान।।२१।।

जिनवाणी भूषण अहो! मण्डित भाव नगीन।
भव्य हृदय शोभित अधिक, जिनका अडिग यकीन।।२२।।

पूर्वापर अविरोधमय, जिनवाणी साक्षात्।
भव्य भाव आराधना, शिव-सुख की सौगात।।२३।।

ज्ञान-नीर वर्षा करे, बनकर जलद महान।
प्रथम और चौबीसवीं, वाणी एक समान।।२४।।

श्री गणधर की बुद्धि में, उतरा ज्ञान अमोल।
भ्रान्ति और संशय मिटें, मन हो जाय अलोल।।२५।।

अर्थरूप उपदेश जिन, गणधर रचते ग्रन्थ।
जिनवाणी अब तक अहो! है यह विस्तृत पंथ।।२६।।

गणधर रचना अंग की, करते पर-उपकार।
श्री स्थविर अंग बाह्य, भाष्य ग्रन्थ उद्गार।।२७।।

अर्द्ध मागधी में कहें, श्री जिनवर उपदेश।
सब जानें सब ही सुनें, रहे न कोई शेष।।२८।।

जिनवाणी भव तारिणी, बोध बीज प्रकटाय।
आदि-अन्त में सार इक, स्याद्वाद सुखदाय।।२९।।

महिमा जैनागम अहो !

विवेक हंस आसीन हो, श्रुत देवी प्रणमन्त।
मुनि '**सुशील**' इस जगत् में, जिन आगम जयवन्त।।३०।।

वाणी अनुपम बंधु यह, आगम में विस्तार।
मुनि '**सुशील**' अनुभव कहे, कहता प्रकट पुकार।।३१।।

द्वादश अंगी वैद्य है, मोहादिक भव रोग।
जन्म-मरण मिट जात हैं, मिटें कर्म के भोग।।३२।।

श्री जिनागम अनुपम अहो! अक्षय ज्ञान निधान।
मुनि '**सुशील**' कर लो मनन, मननशील मुनि जान।।३३।।

आप्त कथित वाणी अहो! गणधर गुम्फित बोल।
अनुमोदन मुनि जन करें, जैनागम अनमोल।।३४।।

सूत्र मनन चिन्तन सतत, तथ्य प्राप्त हो नव्य।
तत्व रत्न खोजत रहो, आगम सागर भव्य।।३५।।

संयम त्याग विराग का, जिन आगम सन्देश।
बहुत सुगम यह राजपथ, सूरि '**सुशील**' जिनेश।।३६।।

जीव-दया वाणी सुखद, जिन आगम नवनीत।
मुनि '**सुशील**' क्रमबद्ध से, लिखता भाव पुनीत।।३७।।

रवि किरणें हैं सूत्र सब, हरण तिमिर अज्ञान।
आँख तीसरी रुद्र की, नाशै काम महान।।३८।।

ऋषिभाषित भाषा अहा, संस्कृत-प्राकृत दोय।
अल्प शब्द गम्भीर अति, भाव गहन अवलोय।।३९।।

जय कालिक जिनवर अहो! दे आगम उपदेश।
कथा-पात्र ही बदलते, अक्षय भाव विशेष।।४०।।

दोष-रहित वाणी अहो! जैनागम कहलाय।
मुनि '**सुशील**' संक्षेप में, सार-सार समझाय।।४१।।

जैनागम वर्णन सुखद, जीवन का आचार।
मुनि '**सुशील**' विचारना, करता बारम्बार।।४२।।

जिनवाणी जिनवर वचन, साधक जीवन-प्राण।
सकल दोष को वेधते, जैनागम के बाण।।४३।।

महिमा जैनागम कहूँ, पहुँचे जहाँ न काल।
भ्रान्त बुद्धि विध्वंस हो, हो वन्दन त्रयकाल।।४४।।

श्री श्रुत वन्दन

जन्म-मरण अरु कष्ट मय, महितल कारागार।
श्रुतदेवी तू शीघ्र ही, बन्धन दूर विडार।।४५।।

देव-असुर-नर पूजते, नित्य सदा श्रुतज्ञान।
जिन आगम सिद्धान्त पद, हो वन्दन श्रद्धान।।४६।।

जैनागम राकेश है, निश-दिन रहता व्योम।
राहु न ग्रसे कुतर्क का, निष्कलंक यह सोम।।४७।।

ज्ञान यज्ञ स्वाध्याय नित, यदि बाधा आ जाय।
दूर करें श्रुत देव सब, बाधा देव भगाय।।४८।।

नानाविध अनुपम अहा! आगम अर्थ अपार।
मुनि '**सुशील**' साक्षात् है, शिव-साधन का द्वार।।४९।।

छन्द मनोहरण

कहाँ अमी अरु विष कहाँ, तम कहाँ कहाँ रश्मि।
कहाँ आक कहाँ आम, अहि पुष्पहार जो।।५०।।

कहाँ तारे कहाँ अर्क, कहाँ नृप कहाँ रंक।
कहाँ आग कहाँ बाग, ग्रीष्म तुषार जो।।५१।।

कहाँ शूल कहाँ फूल, कहाँ कलधौत कहाँ लोह।
कहाँ मित्र कहाँ अरि, दया अत्याचार जो।।१५२।।

कहाँ जैन वैन अहो! मिथ्यात्व वचन कहाँ।
समान कथन करे, मूढ़ मायाचार जो।।५३।।

प्रवचन-परीक्षा

श्री जैनागम के सिवा, अन्य शास्त्र हैं शस्त्र।
या कि कलश है विष-भरा, या काँटों का छत्र।।५४।।

जैनागम पढ़ते न यदि, तो पढ़ना बेकार।
आगम में ही मन रमे, मुनि जीवन का सार।।५५।।

आगम से अज्ञान का, कर छेदन विच्छेद।
आगम के अभ्यास से, होय ग्रन्थि का भेद।।५६।।

लौकिक लोकोत्तर लखो, श्रुत के दो-दो भेद।
सूत्र परीक्षा कीजिए, पा जाये निर्वेद।।५७।।

श्री सद्गुरुसान्निध्य में, समझो शास्त्र रहस्य।
मुनि '**सुशील**' कहता अरे, तभी सफल पांडित्य।।५८।।

जिनागम चक्षु बोध

तजकर सूत्राभ्यास अब, मुनिवर पढ़ते मन्त्र।
बिछा रहे श्रीसंघ में, मनमाने षड्यन्त्र।।५९।।

आगम की आशातना, करे मूढ़ दिन-रात।
भव-भव में दारिद्रय दुख, करता आतम घात।।६०।।

स्वच्छन्द यदि आगम पठन, कहलाये मिथ्यात्व।
गिर जाते भव गर्त्त में, मिले न आतम सत्व।।६१।।

बिना अश्व के रथ कहाँ, घोड़ा बिना लगाम।
जैनागम के ज्ञान बिन, मुनि जीवन बेकाम।।६२।।

आगम का अध्ययन रहे, बिन चिन्तन बेकार।
जैसे हों जन्मान्ध को, दीपक व्यर्थ हजार।।६३।।

अरे अगर इस जन्म में, लिया न आगमज्ञान।
स्तन बकरा कंठ सम, निष्फल जीवन जान।।६४।।

आगम रूपी चक्षु बिन, कहलाये मुनि अन्ध।
देव-गुरू जिन धर्म का, मर्म न जाने मन्द।।६५।।

यदि कानों में नहिं पड़े, जिन आगम उपदेश।
उनका नर भव व्यर्थ है, भूतल भार विशेष।।६६

गिर जाओगे नरक में, होगा नहीं बचाव।
जिनवाणी से दूर यदि, सच्चा है प्रस्ताव।।६७।।

आम न भावै काग को, खर मिसरी कब खाय।
ज्यों जैनागम मूढ़ भी, करता कब स्वाध्याय।।६८।।

जिन आगम कुछ अंश पर, अगर नहीं श्रद्धान।
मूढ़ भाव का जीव वह, भव-भव में हैरान।।६९।।

वर्तमान में कर रहे, आगम वाद-विवाद।
इसीलिए तो हो रहा, जिनशासन बरबाद।।७०।।

तेल बिना दीपक कहाँ, पादप पातविहीन।
सूत्र बिना जीवन दशा, तीनों व्यर्थ प्रवीन।।७१।।

अगर दुष्ट आगम पढ़े, अर्थ करे विपरीत।
मुनि '**सुशील**' गोपन करो, जिनशासन की रीति।।७२।।

आगम की अवहेलना, करता बारम्बार।
नर-जीवन तब व्यर्थ है, कभी न बेड़ा पार।।७३।।

जैनागम भास्वान

श्री जैनागम में अहो! चार कहे अनुयोग।
एक विषय व्याख्या सरल, लगा रहे उपयोग।।७४।।

द्रव्यानुयोग मनन से, आत्म तत्त्व प्रकटाय।
चिन्तन हो षड्द्रव्य का, पदार्थ अरु पर्याय।।७५।।

अहो गणितानुयोग से, पल्योपम स्थितिबोध।
जिससे मन अविचल बने, विकसित अनुभव पौध।।७६।।

पोषक गुण चारित्र हित, मुनियों का व्यवहार।
चरणकरणअनुयोग से, हो जाये भव पार।।७७।।

महत्पुरुष जीवन दशा, मनन कथा अभिराम।
धर्मकथा अनुयोग से, साधक ले विश्राम।।७८।।

सूत्र भेद अनुयोग से, आगम चार प्रकार।
शीघ्र बोध हो सहज में, मिलते तत्त्व उदार।।७९।।

साधक मति गीतार्थ हो, जैनागम आधीन।
निश्रा में अध्ययन करे, होता शीघ्र प्रवीन।।८०।।

जैनागम सागर अहो! साधक बनता लीन।
सरिता सम हैं और सब, होतीं सिंधु विलीन।।८१।।

जैनागम भास्वान सम, समस्त लोक प्रकाश।
अन्य प्रवचन खद्योत सम, जहाँ-तहाँ आभास।।८२।।

दारुण दुख से शास्त्र जिन, करते मुक्त हमेश।
जग में उपकारी महा, जो-जो वचन जिनेश।।८३।।

आगम दीपक साथ में, दुर्मति गिरे न कूप।
पहुँचे शिव निर्विघ्न हो, बनता अविचल भूप।।८४।।

आगम अमृत कुण्ड में, करते भव्य नहान।
जन्म-जन्म के रोग दुख, हो जाते अवसान।।८५।।

आप्तजनों का कथन ही, जैनागम कहलाय।
सीधे-सादे वचन पर, देना ध्यान लगाय।।८६।।

वर्तमान जिनवर नहीं, उत्तम आरा नाय।
जिन आगम जिन बिम्ब ही, निश्चय मुक्ति उपाय।।८७।।

जन्म-मरण का दुक्ख भय, महितल में चहुँ ओर।
केवल आगमज्ञान से, पा जायेगा छोर।।८८।।

सूत्रकार स्तुति

गणधर सुधर्मास्वामिन्, प्रातः स्मरणीय।
जैनागम रचना अहा! जन-जन आचरणीय।।८९।।

अग्नि वैश्यायन गोत्र शुभ, ब्राह्मण कुल विख्यात।
सन्निवेश कोल्लागपुर, पावन भू प्रख्यात।।९०।।

धन्य-धन्य **धम्मिल** पिता, धन्य **भद्दिला** अम्ब।
पुण्यवान भूषण अहो! विश्व धरा स्तम्भ।।९१।।

प्रभु मुख से संयम लिया, शिष्य पाँच सौ साथ।
दीर्घ आयु पाकर अहो! शासन किया सनाथ।।९२।।

जगत्बन्धु वर्द्धमान प्रभु, मोक्षगमन पश्चात्।
संघ-स्यन्दन सारथी, हो चिन्तन अवदात।।९३।।

आगम सारे आपके, गुम्फित गणधर राज।
नाम अमर द्वय लोक में, जिनशासन सरताज।।९४।।

अगर न आगम जगत् में, क्या होता कलिकाल।
मुनि '**सुशील**' अनाथ ज्यों, अरे हाल बेहाल।।९५।।

अगर न आगम जगत् में, मिलता कभी न पंथ।
अमित पुण्य से मिल रहा, जिनशासन निर्ग्रन्थ।।९६।।

जैनागम की नाव से, कर ले सागर पार।
केवट हैं गुरुवर सदा, डूबे नहिं मँझधार।।९७।।

जैनागम है कल्पतरु, बैठो इसकी छाँह।
इसे छोड़कर चाहता, कीकर तले पनाह।।९८।।

आगम से अघ वन दहन, धर्म विटप लहराय।
शिवफल प्रगटे शीघ्र ही, सूरि 'सुशील' उपाय।।९९।।

सिद्धि सदन आगम अहो! चेतन करो प्रवेश।
पाँच भेद स्वाध्याय के, करो विनय परिवेश।।१००।।

जैनागम है परसमणि, पाठक हैं धनवान।
साधन कर चारित्र का, होगा तू भगवान।।१०१।।

जैनागम परताप से, सर्वकाल संसार।
तिरते जीव अनन्त ही, लो श्रद्धा स्वीकार।।१०२।।

नरक निवारक सूत्र जिन, पाप-पंक धुल जाय।
कर्म दहावन वचन शुभ, पढ़ो सूत्र मन लाय।।१०३।।

जैनागम भूषण महा

आगम जाना श्रमण ही, जिनशासन सिरमौर।
करते धर्म प्रभावना, महिमण्डल चहुँ ओर।।१०४।।

आगम जान परोक्ष पर, प्रत्यक्ष गुरुमुख होय।
अतः विनय से लीजिए, भव अन्तर दुख खोय।।१०५।।

आगम आज्ञा मान्य हो, शरणागति स्वीकार।
शिव सुख वैभव प्राप्त हो, दुर्लभ कब संसार।।१०६।।

जब-जब जैनागम पढ़ो, अति आनन्द विभोर।
रोम-रोम श्रद्धा बढ़े, जैसे चन्द्र चकोर।।१०७।।

जब तक आगम नहिं पढ़े, तब तक मिथ्या राग।
नीर-क्षीर को अलग कर, किया नीर का त्याग।।१०८।।

जैनागम आश्रय सदा, लता-विटप का न्याय।
अरे चराचर जगत् में, ज्यों धर्मास्तिकाय।।१०९।।

जैनागम भूषण महा, धारक भव्य सदैव।
सूरि '**सुशील**' वरण करे, हरि कमला स्वयमेव।।११०।।

अक्षर-अक्षर मंत्र है, तवपंक्ति कोष समान।
जैनागम चिन्तामणी, उपमा भी निष्प्राण।।१११।।

जैनागम महिमा महा, अचिन्त्य जगत्प्रभाव।
व्याकुल जो भव भोग से, पाये आत्म स्वभाव।।११२।।

जननीसम आगम अहो! देते हित उपदेश।
फिर भी मूढ़ विवेक बिन, पाते सतत कलेश।।११३।।

अवलोकन आगम करे, संशय करे न कोय।
समझ न आये शीघ्र ही, पृच्छा से हित होय।।११४।।

गहन मर्म प्रकटित करे, जैनागम आधार।
अतः प्रथम कर लीजिए, सूत्र ज्ञान निर्धार।।११५।।

भक्ति-शक्ति दोनों सुलभ, जैनागम दें श्रेष्ठ।
बाकी विकथावाद है, बनकर रहो सचेष्ट।।११६।।

जैनागम अभ्यास बिन, मोह न होगा छार।
सूरि '**सुशील**' अनुभव यही, कहता बारम्बार।।११७।।

अल्प बुद्धि फिर भी करो, तुम आगम अभ्यास।
उतरेगा अनुभूति में, अविचल आत्म-प्रकाश।।११८।।

जिनागम अनुत्तर अहो !

सरवर शोभा जलज की, अरु भूषण की रत्न।
मुनिवर शोभित सूत्र से, शोभित भाग्य प्रयत्न।।११९।।

सूत्र रसायन पीजिए, गुरु आज्ञा अनुसार।
भव बाधा से मुक्त हो, कहते श्री अणगार।।१२०।।

लोक सुखी आगम करे, तीनों ताप विनष्ट।
महा मोह दुख छिन्न हो, पाते भाव प्रकृष्ट।।१२१।।

जैनागम दर्पण कहो, दोष दिखें निज रूप।
मनवांछित शिवफल मिले, कल्पवृक्ष अनुरूप।।१२२।।

दुर्लभ वाचन सूत्र का, महत् पुरुष संयोग।
अवसर यह कलिकाल में, मिलें पुण्य के योग।।१२३।।

मुनि '**सुशील**' गुरुवर कृपा, जैनागम अभ्यास।
तत्त्वरत्न कर प्राप्त हो, जिससे ज्ञान प्रकाश।।१२४।।

कहते श्रमण '**सुशील**' यह, आगम नौका जान।
आत्मवान आरूढ़ हो, पायें मोक्ष महान।।१२५।।

राका रजनी में उदित, पूर्ण इन्दु राकेश।
अन्य शास्त्र उडगण सरिस, मिटे न तम का लेश।।१२६।।

सर्वकाल में एक रस, जिनवाणी प्रभु वीर।
अर्थ भाव जानें वही, जो हैं मति के धीर।।१२७।।

जैनागम साधन बिना, मोक्ष प्राप्त कब होत।
महासिंधु आवागमन, पार कहाँ बिन पोत।।१२८।।

जिनवाणी है मातु-सम, पकड़े उँगली बाल।
माता का वात्सल्य ही, करता सदा सँभाल।।१२९।।

निष्कलंक आगम शशी, घट-बढ़ कभी न होइ।
घटता-बढ़ता चन्द्र है, मावस जाता खोइ।।१३०।।

मुनि '**सुशील**' जिन वचन हैं, रत्नतुल्य रमणीक।
मालावत् गुम्फित करूँ, आगम अर्थ सटीक।।१३१।।

जैनागम के नेत्र से, दीखे जग-जंजाल।
जन्म-मरण भी नष्ट हो, कभी न व्यापै काल।।१३२।।

जिनवाणी जानें वही, अप्रमत्त धीर सुजान।
काला अक्षर प्रमत्त को, महिषी सम लो जान।।१३३।।

न्याययुक्त जिनवर वचन

जानें-मानें अरु करें, साधक की पहचान।
पथ दर्शक हैं श्रमण जन, मत चूके नादान।।१३४।।

कर्म शत्रु सब नष्ट हों, जिनवाणी असिधार।
अमोघ बाण है राम का, भीषण इसकी मार।।१३५।।

संघ सम्पदा सूत्र ही, जिनशासन आधार।
देश तथैव विदेश हो, सूरि '**सुशील**' प्रचार।।१३६।।

श्रद्धा से आगम पढ़ो, करो न तर्क प्रवीन।
सत्य तथ्य वाणी अहो! रखना एक यकीन।।१३७।।

निर्मल जल गंगा बहे, यही सूत्र का हाल।
सूरि '**सुशील**' को मिल गया, अवसर यह कलिकाल।।१३८।।

सहज सिद्धि सुख प्राप्त हो, अगर जिनागम भक्ति।
ज्ञानावरणीय कर्म की, शिथिल हो सके शक्ति।।१३९।।

न्याययुक्त जिनवर वचन, स्वीकृत ले आचार।
श्रद्धा अरु विश्वास हो, बस इतना ही सार।।१४०।।

आगम का करते रहो, वन्दन अरु सत्कार।
पूजन फल भगवन्त का, गणपति का उद्गार।।१४१।।

आगम अतिशय

पापी भी पावन बना, अर्जुन मालाकार।
जिनवाणी पतवार से, जीवन नैया पार।।१४२।।

जिनवाणी जगदम्ब ने, तारा अंजन चोर।
हरिकेशी चाण्डाल थे, बने श्रमण सिरमौर।।१४३।।

अज्ञान रूप विषधर अरे, काट रहा चिरकाल।
मंत्र गारुड़ी है यही, हरे गरल तत्काल।।१४४।।

तीन काल में सिद्ध है, जैनागम सिद्धान्त।
सूरि '**सुशील**' मनन करे, जाकर मुनि एकान्त।।१४५।।

अतिशय आगम पठन से, श्रद्धा वृद्धि विराग।
तीर्थंकर पद भी मिले, करले मन अनुराग।।१४६।।

जैनागम प्रत्यक्ष निधि, दे संतोष हमेश।
विकथा चार कषाय से, बचते रहें विशेष।।१४७।।

आगम घन जलधार से, मोह पंक परिहार।
निर्मल रूप स्वरूप हो, प्रकटित हो क्षण वार।।१४८।।

त्रिपदी-रहस्य

तीन ज्ञानधारक प्रभो, दीक्षा चतुर्थ जान।
होते जिनवर केवली, करें देशना दान।।१४९।।

तीर्थंकर त्रिभुवन तिलक, जन-जन तारणहार।
अर्थ रूप जिनदेशना, गणधर मुख विस्तार।।१५०।।

अहो! अहो! जिन केवली, त्रिपदीमय उपदेश।
जिससे रचना सूत्र हो, हारक भवि जन क्लेश।।१५१।।

द्रव्य सर्व उत्पाद व्यय, तथा ध्रौव्यस्वरूप।
त्रिपदी तीर्थंकर कथन, आगम जननी रूप।।१५२।।

श्री जिनागम सहाय से, अनन्त जन भव पार।
जिन पड़िमा अणु जिनालय, विषम काल आधार।।१५३।।

श्रुतज्ञान सरिस विश्व में, अन्य नहीं आधार।
मुनि '**सुशील**' सज्झाय ही, रात-दिवस स्वीकार।।१५४।।

पूर्व समय आगम अधिक, सम्प्रति पेंतालीस।
अमृत कुपिका तुल्य है, फरमाते जगदीश।।१५५।।

श्री गणधर श्रुत केवली, प्रत्येकबुद्ध भगवान।
अभिन्न दश पूर्वधरी, रचित सूत्र पहचान।।१५६।।

युक्ति-युक्त हैं जिनवचन, सत्य सनातन ग्रन्थ।
मुनि '**सुशील**' हैं सुगम पथ, ऐसा अन्य न पंथ।।१५७।।

सत् शास्त्र जीवन प्रभा, जैनागम उपकार।
मुनि '**सुशील**' हैं शान्ति का, यह अक्षय आगार।।१५८।।

अंधों को हैं नेत्र सम, आगम सूत्र महान।
मिथ्यावादी अन्ध हैं, भटकें सकल जहान।।१५९।।

आगम गुण गायन सतत, भव्य करे भव अन्त।
आजीवन श्रद्धा यही, सत्य भाव निर्ग्रन्थ।।१६०।।

अगणित गुण गरिमा अहो! जैनागम मार्तण्ड।
मिथ्यादृष्टि उलूक ज्यों, रहें तिमिर पाखण्ड।।१६१।।

निर्युक्ति टीका भाष्य अरु, चूर्णि आगम बोध।
भव भीरु श्री सूरीश्वर, की रचना अति शोध।।१६२।।

शाश्वत आगम भाव से, सब जिनवाणी एक।
केवल भिन्न हो शब्द से, होते पात्र अनेक।।१६३।।

आगम अध्ययन बोध

आज्ञा बिन आगम पठन, गरल तालपुट जान।
मुनि '**सुशील**' सम्बोधि यह, समझे जो गुणवान।।१६४।।

मूल पाठ श्रावक हिते, नहिं वांचन अधिकार।
फिर भी पर उपकारवश, लिखता सार विचार।।१६५।।

गुरुकुल में जाकर रहो, चाहो आगमज्ञान।
गुप्त रूप जो धारणा, सहज प्राप्त श्रीमान्।।१६६।।

सूत्र प्रकाशित सूर्य सम, सुलभ हुए कलिकाल।
फिर भी जो नर दूर है, भाग्यहीन कंगाल।।१६७।।

चाहे जिसको है नहीं, जैनागम का ज्ञान।
पात्र-कुपात्र को देखकर, कर लेना पहचान।।१६८।।

जैनागम के ज्ञान बिन, व्यर्थ देशना जान।
मुनि '**सुशील**' की बात पर, धरना साधक ध्यान।।१६९।।

सूत्र ज्ञान जिसने लिया, सभी ले लिया सार।
बस इतनी-सी बात है, ध्यान धरो अणगार।।१७०।।

गागर में सागर भरा, सिन्धु बिन्दु दरम्यान।
परमाणु रूप आगम कहो, या कल्पबेल उपमान।।१७१।।

जैनागम इस विश्व में, शिव-सुख का आधार।
जाना नहिं सिद्धान्त जो, व्यर्थ मही पर भार।।१७२।।

जैनागम समझो अगर, शिव-सुख अपने हाथ।
रे चेतन! चिन्तन करो, यह परभव का साथ।।१७३।।

आगम से अनभिज्ञ है, निर्णय से अनजान।
निजमत परमत एक है, कोकिल-काग समान।।१७४।।

जैनागम आदेश को, करता है जो मान्य।
सर्वसिद्धियाँ कर बसें, सब भूसी यह धान्य।।१७५।।

छन्द कुंडलिया

बिन योगोद्वहन के पठन, बिन दीक्षा पर्याय।
आगम पढ़ना दोष हो, ज्ञानी जन समझाय।।
ज्ञानी जन समझाय, ज्यों विधवा गर्भ धारे।
विधवा होती भ्रष्ट, कि संशय अधिक उभारे।।
मुनि '**सुशील**' उपमा कहे, उलूक अंधा होय दिन।
बिन योगोद्वहन सूत्र, पठन दीक्षा पर्याय **बिन**।।१७६।।

ज्योतिर्मय उपदेश

देवों को होता सदा, मात्र अवधि का ज्ञान।
जिनवर शोभित नयन युग, दर्शन केवलज्ञान।।१७७।।

निष्कारण करुणा करें, तीर्थंकर भगवन्त।
ज्योतिर्मय उपदेश ज्यों, पावस घन बरसंत।।१७८।।

पूर्वश्रुत अति गहन था, सुलभ नहीं हो ज्ञान।
अंगसृष्टि सबके लिए, परहित दृष्टि महान्।।१७९।।

जिनवाणी मातेश्वरी, भव्य जीव सुत लाल।
करुणाकर रक्षण करो, इतनी अर्ज सँभाल।।१८०।।

अहो! विनय से कर लिया, आगम का बहुमान।
कमलाकर तल जानिए, मोक्ष निकट मतिमान।।१८१।।

धन्य-धन्य आगम अहो! भव मण्डल आधार।
जिनवाणी जन रसिक जो, अहो! सफल अवतार।।१८२।।

आगम निधि प्रकटित अहो! समवसरण में दान।
आठ प्रहर हितदेशना, सुरनर हर्ष प्रधान।।१८३।।

तत्व खजाना सूत्र है, नव-नव रत्न अनेक।
सुगुरु जौहरी शरण से, करना प्राप्त विवेक।।१८४।।

जिनवाणी न्यग्रोध सम, भाष्य शाख विस्तार।
आज्ञा छायाश्रय रहो, अहो! अहो! अणगार।।१८५।।

अहो! अन्तर्मुहूर्त्त में, जैनागम निर्माण।
श्री गणधर गुम्फित करे, आर्य धरा एहसान।।१८६।।

चरम चक्षु सब जगत् में, धारण करें अनेक।
सूत्र नयन निर्ग्रन्थ के, जिससे पूर्ण विवेक।।१८७।।

चलते वाद-विवाद सब, जब तक सूत्र न ज्ञान।
तब तक तात विडम्बना, रहती खींचातान।।१८८।।

जैनागम श्रद्धा करो, फलयुत प्रत्याख्यान।
चाहे श्रावक श्रमण हो, सब हित भाव समान।।१८९।।

जैनागम है राजपथ, उपाध्याय मर्मज्ञ।
विनययुक्त सेवा करें, बन जाएँ तत्त्वज्ञ।।१९०।।

दीक्षित तीन वर्ष का, निशीथ अरु आचार।
अध्ययन की अनुमति करें, श्री गुरुवर गुणधार।।१९१।।

जिनागमों के पर्यायवाची नाम

सूत्रग्रन्थ प्रवचन वचन, आप्त वचन आम्नाय।
प्रज्ञापन उपदेश श्रुत, आगम नाम कहाय।।१९२।।

श्री आचारांग के पर्यायवाची नाम

आयार आयरिस अंग, आजाइ आचाल।
आगराऽऽसास आइण्य, अमोक्ख अरु आगाल।।१९३।।

श्री आचारांग महत्त्व बोध

आचारांग सूत्र अहो, भव्य जीवन आधार।
प्रथम रूप अध्ययन सुखद, साधक हो भव पार।।१९४।।

आचारांग सूत्र अहो! श्रमण धर्म का मूल।
गुरुमुख से पढ़ लीजिए, हो संयम अनुकूल।।१९५।।

आचारांग सूत्र अहो! ज्ञाता हो आचार्य।
इसीलिए माना गया, श्रमणों में अनिवार्य।।१९६।।

आचारांग सूत्र अहो! प्रथम प्रभोः उपदेश।
त्रैकालिक संविधान यह, हारक भविजन क्लेश।।१९७।।

आचारांग सूत्र अहो! सब अंगों का सार।
सूरि '**सुशील**' निवृत्ति का, सहज मार्ग सुखकार।।१९८।।

आचारांग सूत्र अहो! प्रथम अध्ययन खास।
मुनि जीवन परिपालना, कर लेना उल्लास।।१९९।

आचारांग सूत्र अहो! जैनधर्म का प्राण।
विश्वबन्धु की भावना, अखिल जगत् का त्राण।।२००।।

आचारांग सूत्र अहो! सर्व विश्व सिरमौर।
वाद तर्क के समर का, हो विरोध अति घोर।।२०१।।

आचारांग सूत्र अहो! सर्वाधिक प्राचीन।
भाषाशास्त्री कह रहे, जन-जन आज यकीन।।२०२।।

आचारांग सूत्र अहो! जैनागम नवनीत।
गद्य-पद्य मिश्रित तथा, लय-गति-युत संगीत।।२०३।।

आचारांग सूत्र अहो! करता संशय नष्ट।
गुप्त अर्थ प्रकटित करे, साधक का है इष्ट।।२०४।।

आचारांग सूत्र अहो! तीर्थंकर पर्याय।
समवसरण अनुभव करे, सुर-तिर्यंच नर राय।।२०५।।

आचारांग सूत्र अहो! जानो प्रकट प्रमाण।
कुंजी यह आचार की, जैनागम जगप्राण।।२०६।।

जगनायक जिनवर अहो! देशकाल अनुरूप।
देते पावन देशना, प्रकटित आतम रूप।।२०७।।

महाविदेह सुक्षेत्र में, सीमन्धर भगवन्त।
अहो! आयारसूत्र का, सर्वप्रथम वर्णन्त।।२०८।।

आगम की परिभाषा

वस्तु-तत्त्व का जो करे, धर्म-मर्म का ज्ञान।
मुनि '**सुशील**' आगम वही, कर लेना श्रद्धान।।२०९।।

परम्परा आचार से, तत्त्व देइ प्रकटाय।
आप्त वचन आगम अहो, सीख सही बतलाय।।२१०।।

राग-द्वेष से मुक्त है, आप्त पुरुष भगवन्त।
उनका हित उपदेश ही, जैनागम शिव-पंथ।।२११।।

पूर्वापर अविरोधमय, जिनवाणी जयवन्त।
सर्वज्ञ ईश की देशना, गूँथें गणधर सन्त।।२१२।।

प्रथम आगम वाचना

वर्द्धमान निर्वाण से, दो सौ वर्षों बाद।
भारत भू दुष्काल हो, द्वादश वर्ष विषाद।।२१३।।

छिन्न-भिन्न मुनि संघ थां, बहुश्रुत मुनि अवसान।
जैनागम विस्मृत हुए, किंचित् प्रज्ञावान।।२१४।।

नगर पाटलिपुत्र में, मुनि सम्मेलन होय।
अंग संकलन कर लिए, याद जिन्हें था जोय।।२१५।।

द्वितीय आगम वाचना

खारवेल नरराज थे, शासन-भक्त उदार।
करवाया मुनि संघ से, जिन आगम उद्धार।।२१६।।

प्रान्त उड़ीसा मध्य में, शैलकुमारी स्थान।
श्रमणसंघ एकत्र तब, जिन आगम उत्थान।।२१७।।

तृतीय आगम वाचना

श्री स्कन्दिल मुनिराज थे, था शासन दुष्काल।
अतिशायी श्रुत नष्ट हो, श्रमणसंघ बेहाल।।२१८।।

बीत गया दुर्भिक्ष जब, मथुरा नगरी मध्य।
सूत्र संकलन मुनि करें, नव-नव खोजे कथ्य।।२१९।।

चतुर्थ आगम वाचना

नागार्जुन आचार्य थे, बना वाचना योग।
वल्लभीपुर सौराष्ट्र में, मुनियों का संयोग।।२२०।।

जो-जो स्मरण था उन्हें, गुंफित किया तमाम।
रक्षण जैनागम हुआ, था अनुपम परिणाम।।२२१।।

पंचम आगम वाचना

अहो! अहो! दसवीं सदी, वीर बाद निर्वाण।
गणी देवर्द्धि क्षमाश्रमण, जिनशासन परिधान।।२२२।।

जिनशासन रक्षक अहो! कर अपना बलिदान।
अमर धरा पर बन गये, युग-युग नाम निधान।।२२३।।

वल्लभीपुर सौराष्ट्र में, मुनि मण्डल एकत्र।
जैनागम लिखते रहे, विस्मृत पाठ पवित्र।।२२४।।

पंचम थी यह वाचना, पुस्तक रूप ललाम।
कतिपय श्रमण विरोध में, क्या डरने का काम।।२२५।।

पाठान्तर मिलते रहे, सूरि '**सुशील**' निर्देश।
भाव समन्वय हो गए, आगम रूप विशेष।।२२६।।

षष्ठ प्रयास

युग प्रसिद्ध मुनिराज थे, पूरण प्रज्ञावान।
लिख-लिख कर आगम अहा, अमित किया अहसान।।२२७।।

नव्य-भव्य चिन्तन दिये, आगम टीकाकार।
लेखन चूर्णी भाष्य हित, जिनशासन उपकार।।२२८।।

मुनि '**सुशील**' चिन्तन रहा, बीत गये बहु साल।
जिन आगम उपदेश के, लिखने पद्य रसाल।।२२९।।

एक-एक आगम अहा, क्रमशः लेखन भाव।
मुनि '**सुशील**' सोचत रहे, रहे सतत उर चाव।।२३०।।

नम्र कथन

जैनागम दोहन करूँ, नव्य भव्य इतिहास।
मुनि '**सुशील**' सबके लिए, कर लेना अभ्यास।।२३१।।

कण्ठस्थ कर व्याख्यान में, लो उपयोग ललाम।
सूरि '**सुशील**' नम्र कथन, मत बदलो तुम नाम।।२३२।।

समस्त विघ्न विनाशिनी, जिनवाणी शिव-द्वार।
जैनागम वन्दन करूँ, क्षण-क्षण बारम्बार।।२३३।।

सूरि '**सुशील**' नित्य नमन, बहुश्रुत श्री श्रमणेश।
यथातथ्य वर्णन करे, भाषक जो तीर्थेश।।२३४।।

सूत्रज्ञान जिसने लिया, सभी ले लिया सार।
बस इतनी-सी बात में, लाखों मर्म विचार।।२३५।।

सूत्र रचना हेतु छह निमित्त

अध्ययन शतक उद्देश्य, प्रभो वचन अनुसार।
वाचन हित अनुकूलता, रचना कारण सार।।२३६।।

क्या अध्ययन पहले करें, क्या फिर करना बाद।
आगम-रचना श्रेष्ठ शुभ, सरल रीति से याद।।२३७।।

श्री सद्गुरु भगवन्त मुख, जैनागम हर एक।
सहज अर्थ उर धारणा, जिससे आगम देख।।२३८।।

सद्गुरु अपने शिष्य हित, देते आगमज्ञान।
सूत्ररूप रचना करे, श्री गणधर भगवान।।२३९।।

सद्गुरु अपने शिष्य से, पूछे प्रश्न विचार।
जिससे रचना सूत्र की, करते करुणागार।।२४०।।

शिष्य पृच्छा गुरुदेव से, उत्तर से सन्तोष।
जिससे आगमसूत्र की, हो रचना निर्दोष।।२४१।।

गणधर नाम कर्म उदय (जन), रचना सूत्राचार।
चतुर्विध श्रीसंघ का, हो उन्नत उपकार।।२४२।।

श्री निर्ग्रन्थ प्रवचन अहो! दुग्ध तुल्य उपमान।
मंथन टीका चूर्णि का, अर्थ घृत संविधान।।२४३।।

आगम लेखन विरोध रहस्य

अगर सूत्र लिपिबद्ध हो, बहुधा उत्पन्न दोष।
हिंसा हो त्रस जीव की, संयम क्षय उद्घोष।।२४४।।

जैनागम प्रतिलेखना, सम्यक् होती नाय।
लेखन में अति दोष है, पूर्व सूरि फरमाय।।२४५।।

पुस्तक भार उपाधि से, संयम जाते हार।
आज्ञा कब जिनराज की, परिग्रह भय संसार।।२४६।।

पुस्तक से स्वाध्याय में, रहता नित्य प्रमाद।
इसीलिए लेखन नहीं, करना व्यर्थ विवाद।।२४७।।

श्री बृहत्कल्प भाष्य में, फरमाते गणवृन्द।
साधक पुस्तक खोलता, अथवा करता बन्द।।२४८।।

जितनी-जितनी बार में, अक्षर-लेखन होय।
चतुर्लघु का प्रायश्चित्त, संशय करे न कोय।।२४९।।

अरे पुरातन समय में, बातें बहुत विरोध।
तऊ अनुग्रह संत का, लिखते आगम शोध।।२५०।।

स्वाध्याय निषेध का बोध

सूरि '**सुशील**' सिद्धान्त जिन, धारे शुद्ध श्रद्धान।
वचनामृत उर पान कर, भक्ति रसिक बहुमान।।२५१।।

सम्यक् ज्ञानी जीव हो, सुमति युक्त स्वाध्याय।
प्रज्ञापना के प्रथम पद, आगम में समझाय।।२५२।।

असज्झाय चौंतीस तज, प्रतिदिन भव्य विचार।
नव्य ज्ञान अभिवृद्धि हो, आगम का उद्गार।।२५३।।

स्वाध्याय-निषेध-विचार

नभ में तारा-पतन हो, चपला चमक अकाल।
आगम की सज्झाय तू, एक प्रहर तक टाल।।२५४।।

किसी दिशा में दाह हो, धक्-धक् दहके आग।
दाह शान्त के काल तक, स्वाध्याय रस त्याग।।२५५।।

घन गरजें बिन काल ही, चपला कड़क अकाल।
दोय प्रहर वर्जित कथन, भव्य करो यह ख्याल।।२५६।।

तिथियाँ पड़वा-दौज की, और तीज की रात।
शुक्ल पक्ष सज्झाय तज, एक प्रहर तक भ्रात।।२५७।।

धुँअर श्वेत नभ में दिखे, अथवा काला रंग।
जब तक हो तब तक सुनो, स्वाध्याय कर भंग।।२५८।।

यक्ष चिह्न आकाश में, पाठक को दिखलाय।
रज आच्छादित हो रही, तब तक तज स्वाध्याय।।२५९।।

औदारिक सम्बन्धी स्वाध्याय निषेध

रक्त-मांस दिखने लगे, साठ हाथ की माप।
भीतर हो स्वाध्याय तज, फरमाते जिन आप।।२६०।।

मानव हड्डी रक्त हो, शत कर त्याग निर्देश।
जली धुली नहिं हो अगर, द्वादश वर्ष निषेध।।२६१।।

अशुचि दिखाई दे अगर, या आये दुर्गन्ध।
तब तक नहिं स्वाध्याय कर, फरमाते जिनचन्द।।२६२।।

मरघट हो यदि निकट में, शत कर लो तुम दूर।
स्वाध्याय नहिं कीजिए, रखना ध्यान जरूर।।२६३।।

चन्द्रग्रहण द्वादश प्रहर, अरु सोलह भास्वान।
असंज्झाय आगम वचन, समझ-समझ धीमान।।२६४।।

अन्य स्वाध्याय निषेध बोध

चर्चित मानव भूमिपति, जो जाये परलोक।
जब तक घोषित अन्य ना, स्वाध्याय पर रोक।।२६५।।

राज-विग्रह जब तक रहे, तब तक सूत्र न बाँच।
मुनि '**सुशील**' श्रद्धा करे, जिनवाणी पर साँच।।२६६।।

शव पंचेन्द्रिय का पड़ा, पाठक भवन निवास।
स्वाध्याय नहीं कीजिए, कर आगम विश्वास।।२६७।।

भाद्राषाढ़ासोज कह, कार्तिक अरु मधुमास।
राका तिथि अरु प्रतिपदा, मान्य नहीं तिथि खास।।२६८।।

स्वाध्याय नहीं कीजिए, सन्धि समय जो चार।
सूरि '**सुशील**' सूत्र वचन, सदा सत्य हितकार।।२६९।।

जिनवाणी की वर्तमान स्थिति

वर्तमान कलिकाल में, आगम रूप हजार।
उथल-पुथल के अर्थ से, हो संशय विस्तार।।२७०।।
जिन-प्रतिमा वर्णन अहा! देते शीघ्र निकाल।
मनमानी वे कर रहे, मानव नहीं विडाल।।२७१।।
चैत्य अर्थ को भग्न कर, लिखते ज्ञान प्रधान।
यह प्रत्यक्ष में मूढ़ता, मिथ्यात्वी मतिमान।।२७२।।
मूल सूत्र को बदलकर, लिखते पाठ नवीन।
करे उत्सूत्र प्ररूपणा, ये मानव मति हीन।।२७३।।
सूत्र परिचय न्यून अब, कथारसिक नादान।
इधर-उधर की बात पर, देते मुनि व्याख्यान।।२७४।।
शब्द-शुद्धि चिन्तन नहीं, गृहीत अपना पक्ष।
जिससे मनुज मिथ्यात्वी, केवल महि यश लक्ष।।२७५।।
अभयदेव श्रीमद् श्रमण, नवांग टीकाकार।
चैत्य अर्थ जिनमूर्ति ही, फरमाया उद्गार।।२७६।।
टीका भाष्य व चूर्णि का, क्यों करते इनकार।
अरे कहो इसके बिना, प्राप्त न अर्थ विचार।।२७७।।
चैत्य विरोधी लोग जो, करते अति अन्याय।
दुरित वृद्धि कर स्वयं ही, लेते जनम बढ़ाय।।२७८।।

मंगलाचरण

श्री अष्टापद तीर्थप्रति, शिवराणी भगवन्त।
जय जय **आदि जिणंद** पद, वन्दन सतत अनन्त।।१।।

नमो नमो जिनसूत्र को, निशि-दिन बारम्बार।
आगम नौकारूढ़ हो, भवदधि तारणहार।।२।।

नमो नमो जिन सूत्र को, प्रकटित भाव अभीष्ट।
सूत्र सजीवन औषधी, भव-भव रोग विनष्ट।।३।।

निष्कारण तारणतरण, संयम के आगार।
कि समता ऋजुता मृदुता, तीनों अपरम्पार।।४।।

जिनका अतिशय पुण्य था, महिमा चारों ओर।
श्रीगुरु **वृद्धि विजय** प्रभु, जिनशासन सिरमौर।।५।।

तीर्थप्रभावक तीर्थपति, तीर्थंकर अनुरूप।
सिंहतुल्य गम्भीर मुख, मुनिमण्डल के भूप।।६।।

परम प्रभावक परम गुरु, परम पूज्य भगवन्त।
श्रीमद् विजयनेमि सूरि, वन्दन चरण अनन्त।।७।।

महारथी साहित्य के, कोविद कुल कमनीय।
तेजस्वी रविमणि सदृश, युग-युग आदरणीय।।८।।

विश्ववन्द्य आचार्यवर, पुरुषोत्तम कलिकाल।
श्री विजयलावण्य सूरि, शासन ज्ञान मशाल।।९।।

भारतभूमि सुयश अहो! अतुल अनन्त अपार।
अद्भुत श्रुतधर आप थे, पूरण करुणागार।।१०।।

श्री सद्गुरु अग्रज अहो! रहते नित निष्काम।
श्रीमद् विजयदक्ष सूरि, अगणित उन्हें प्रणाम।।११।।

पाया सद्गुरुराज का, आशीर्वाद हमेश।
जैनागम अनुवाद हित, पावन करूँ प्रवेश।।१२।।

श्री भद्रबाहु आचार्यवर, आगम टीकाकार।
श्री जिनदास महतरगणी, जिनका शत आभार।।१३।।

आचार्य **शीलांक सूरि, श्री अजित सूरिदेव।**
निर्युक्ति चूर्णि दीपिका, सहाय ग्रन्थ सदैव।।१४।।

इन पूज्यों के चरण का, लेकर मैं आधार।
सूरि 'सुशील' काव्य रम्य, रचना हित तैयार।।१५।।

श्रीमद् आचारांगसूत्र
तस्य
प्रथम अध्ययन : शस्त्रपरिज्ञा

प्रथम उद्देशक

● छन्द-दोहा ●

जैसा गीता में हुआ, कृष्णार्जुन संवाद।
ऐसे ही गुरु-शिष्य की, आज कर रहे याद।।१।।

सुधर्म स्वामी पाँचवें, प्रभु गणधर विख्यात।
कहते **जम्बू शिष्य** से, धर्म-मर्म की बात।।२।।

आगम रचना इन करी, किया जगत् उपकार।
पढ़ो-सुनो संवाद यह, वाणी लो उर धार।।३।।

● जीव का अस्तित्व बोध ●

मूलसूत्रम्—

सूयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ।

पद्यमय भावानुवाद—

कहें **सुधर्मा शिष्य** से, आयुष्मन् यह जान।
श्रीमुख प्रभु से मैं सुना, जीव बोध का ज्ञान।।१।।

ऐसे हैं कुछ जीव जग, जिन्हें न संज्ञा-ज्ञान।
कैसे आगे यह कहूँ, सुन लेना धर ध्यान।।२।।

'संज्ञा' है सुन 'चेतना' दो प्रकार लो जान।
ज्ञान-चेतना है प्रथम, दूजी अनुभव-ज्ञान।।३।।

संवेदन-अनुभूति तो, सब में होती तात।
ज्ञान-बोध जिनमें रहे, संज्ञी जीव कहात।।४।।

• चतुर्थवाद •

मूलसूत्रम्—

से आयावादी लोयावादी कम्मावादी किरियावादी।

पद्यमय भावानुवाद—

भव-भव भटके आतमा, रखता जो संज्ञान।
आत्मवादी है वही, लो तुम आगे जान।।१।।

जन्म-मरण हो लोक में, कारण कर्म-विधान।
लोक-कर्म-वादी वही, क्रिया करे वह जान।।२।।

राग शुभाशुभ कर्म की, क्रिया बाँधती कर्म।
चारों वादी एक ही, कहते स्वामि **सुधर्म**।।३।।

• योग चिन्तन •

मूलसूत्रम्—

अकरिस्सं चऽहं, कारवेसु चऽहं, करओ यावि समणुण्णे भविस्सामि।

पद्यमय भावानुवाद—

'किया' 'करूँ' 'करूँगा' मैं, तीन काल का बोध।
अनुमोदन भी मैं करूँ, समझे जो कर शोध।।१।।

क्रिया रूप जो समझता, कर सकता वह त्याग।
इसको ही **जम्बू** कहें, आत्मधर्म की जाग।।२।।

• कर्म समारम्भ •

मूलसूत्रम्—

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति।।३।।

पद्यमय भावानुवाद—

समारम्भ का हेतु है, यही क्रिया सुन तात।
हिंसा का कारण यही, करें जीव की घात।।१।।

क्रिया रूप को समझकर, करना खूब विचार।
ज्ञान-विरति से त्यागना, जीवन का आधार।।२।।

N
पूर्व जन्म का
दिशा अज्ञान
W
E
S

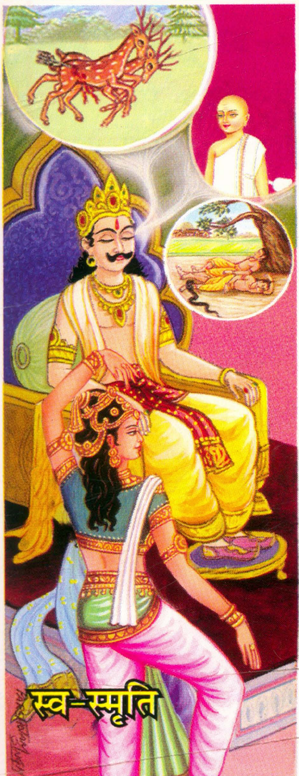
स्व-स्मृति

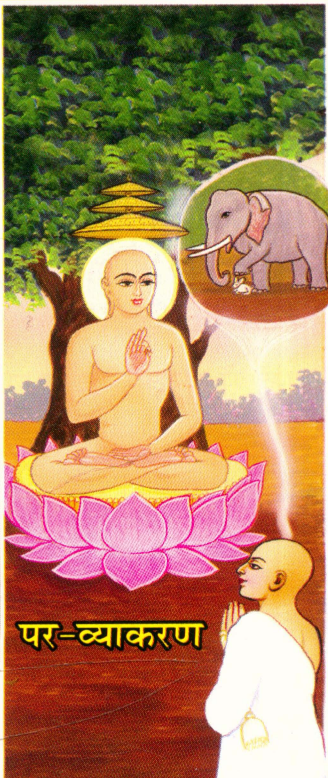
पर-व्याकरण

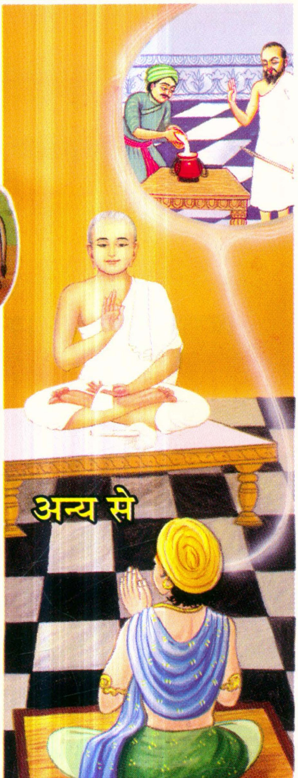
अन्य से

पूर्व जन्म का दिशा अज्ञान

इस संसार में अनेक जीवों को यह ज्ञान नहीं होता है कि मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या दक्षिण, पश्चिम, उत्तर अथवा ऊर्ध्व दिशा अथवा अधो दिशा से आया हूँ? या किसी एक दिशा-विदिशा से इस संसार में आया हूँ। मेरी आत्मा कहाँ से आई है कहाँ आगे जन्म लेगी? उनके मन में इस प्रकार के प्रश्न उठते रहते हैं।

उक्त प्रश्नों का समाधान उन्हें तीन प्रकार से मिल जाता है—

(1) **स्व-स्मृति से**—किसी को ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपक्षम होने पर अचानक जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को राजसभा में नर्तकी का नृत्य देखते-देखते हुआ था।

(2) **पर-व्याकरण से**—किसी को तीर्थंकर आदि विशिष्ट ज्ञानियों के बोध कराने पर। जैसे मेघ मुनि को भगवान महावीर की वाणी से हाथी के भव की स्मृति हुई।

(3) **परेतर उपदेश से**—किसी को अवधिज्ञानी आदि अन्य मुनियों के मुख से सुनकर अपने पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। जैसे भृगु पुरोहित के पुत्रों को मुनियों के मुख से सुनकर पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ।

• क्रिया और कर्मबोध •

मूलसूत्रम्—

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदेइ।

पद्यमय भावानुवाद—

क्रिया तथैव कर्म का, अगर स्वरूप न ज्ञात।
बहु प्रकार की योनियों, जन्म-मरण वह पात।।१।।

बहुविध स्पर्श अनुभूति, करता जीव अनेक।
अथवा सुख-दुख भोगता, पाठक करो विवेक।।२।।

• परिज्ञा-बोध •

मूलसूत्रम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे दुक्ख से मुक्ति हित, निश्चय जिन फरमान।
परिज्ञा द्वय प्रकार की, विवेक मति पहचान।।

• पाप निमित्त-बोध •

मूलसूत्रम्—

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाई-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेउं।

पद्यमय भावानुवाद—

कहें परिज्ञा बोध को, अथवा कहें विवेक।
हिंसा के कारण कहें, जिनवर वीर अनेक।।१।।

जीवन जीने के लिए, पाप क्रिया अनुरक्त।
नानविध हिंसा करें, अविवेकी नर त्रस्त।।२।।

अपने यश-सम्मान हित, जन्म हर्ष भी साथ।
मरण मुक्ति दुख टालने, रँगें रक्त में हाथ।।३।।

• कर्मबन्ध विचार •

मूलसूत्रम्—

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति।

पद्यमय भावानुवाद—

कर्मसमारम्भ हो रहे, बहु प्रकार इस लोक।
जिसको फल का ज्ञान हो, मुनिवर वही विशोक।।

• अनुभूति का अपूर्वदान •

मूलसूत्रम्—

जै जस्सेए लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मणी परिण्णायकम्मे।।१३।। त्ति बेमि।।

पद्यमय भावानुवाद—

कर्म मर्म जो जानता, कर देता वह त्याग।
वही श्रमण संसार में, जिसका भाव विराग।।१।।

प्रभु-मुख से मैंने सुने, अरु समझे जो भाव।
वैसा ही बतला रहा, अहो! शिष्य सुन चाव।।२।।

द्वितीयोद्देशकः

• अबोध दशा •

मूलसूत्रम्—

अट्टेलोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए।
अस्सिं लोए पव्वहिए। तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति।।

पद्यमय भावानुवाद—

सुनो शिष्य इस लोक में, वे ही पीड़ित तात।
ज्ञान-रहित ये मूढ़ जन, दिखा न बोध प्रभात।।१।।

लाख-लाख हो यत्न भी, फिर भी प्राप्त न बोध।
अज्ञानी बनकर रहें, ज्यों पानी बिन पौध।।२।।

• पृथ्वीकाय बोध •

मूलसूत्रम्–

संति पाणा पुढो सिआ।

पद्यमय भावानुवाद–

अज्ञानी इस लोक में, पंडित हो दिन-रात।
नित्य यही अनुभव करे, फिर भी समझ न भ्रात।।१।।

भिन्न-भिन्न परिताप दें, नाना कर्म विचार।
रे! रे! आतुर जीव तू, विषयासक्त अपार।।२।।

पृथ्वीकाय मध्य में, आश्रित जीव अनेक।
हिंसा कभी न कीजिए, रखना यही विवेक।।३।।

• श्रमण हितोपदेश •

मूलसूत्रम्–

लज्जमाणा पुढो पास।

पद्यमय भावानुवाद–

रे! रे! साधक देख तू, साधक का व्यवहार।
हिंसा से लज्जित रहे, अनुकम्पा आचार।।

• असाधु निर्णय •

मूलसूत्रम्–

अणगारा मो त्ति एग पवयमाणा।।

पद्यमय भावानुवाद–

रे! रे! देख कहते रहें, गृह-त्यागी हम सन्त।
फिर भी हिंसा कर रहे, विषयों में आसक्त।।१।।

• बोधिबाधक तत्त्व •

मूलसूत्रम्–

तं से अहियाए, तं से अबोहिए।

पद्यमय भावानुवाद—

रे! रे! हिंसा जगत् में, परपीड़न अन्याय।
बोधिविरोधक जान तू, सूरि '**सुशील**' बताय।।

● हिंसा ही नरक है ●

मूलसूत्रम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए। सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा इहमेगेसिं। णायं भवइ, एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरहे। इच्चत्थं गढिए लोए।

पद्यमय भावानुवाद—

रे! रे! चेतन समझ तू, हिंसा का परिणाम।
संयम में दृढ़ता करे, लेकर समकित दाम।।१।।

भगवान या मुरिाज से, श्रुत सम्यक् उपदेश।
विरले नर को ज्ञात हो, निश्चय हिंसा क्लेश।।२।।

यह हिंसा बन्धन अरे, यही मोह अरु मार।
यही नरक प्रत्यक्ष में, सूरि '**सुशील**' विचार।।३।।

● सुख इच्छुक ●

मूलसूत्रम्—

इच्चत्थं गढिए लोए।

पद्यमय भावानुवाद—

अभिलाषी जो सौख्य का, मूर्च्छित विषयों माँय।
करता हिंसा मनुज वह, दारुण दुख प्रकटाय।।

● अव्यक्त प्राणानुभूति ●

मूलसूत्रम्—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे।

पद्यमय भावानुवाद—

अंध-वधिर इन्द्रिय विकल, मूक पंगु महिकाय।
उनको अनुभव कष्ट हो, अव्यक्त चेतनराय।।१।।

जैसे मूर्च्छित मनुज को, सुख-दुख पीड़ा होय।
त्यों षट्काया जीव को, सुख-दुख अनुभव होय।।२।।

तीसरा उद्देशकः

• संयम श्रद्धा •

मूलसूत्रम्—

जाए सद्धाएणिक्खंतो, तमेव अणुपालिज्जा विजहित्ता विसोत्तियं।

पद्यमय भावानुवाद—

रे साधक! जिस भाव से, दीक्षा ली स्वीकार।
वही भाव संशयरहित, कर पालन अणगार।।

• महामार्ग •

मूलसूत्रम्—

पणया वीरा महावीहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

वीर धीर मानव अहो! महामार्ग अपनाय।
लक्ष्य समर्पित हो गए, श्रद्धा बल विकसाय।।

• जल सजीव बोध •

मूलसूत्रम्—

इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदय-जीवा वियाहिया।

पद्यमय भावानुवाद—

साधक के कल्याण-हित महावीर फरमान।
प्राणवान निश्चित सलिल, नहीं भूल मतिमान।।

• श्रमण धर्म •

मूलसूत्रम्—

अदुवा अदिण्णादाणं।

पद्यमय भावानुवाद—

जो भी सचित्त नीर का, कर लेते उपयोग।
हिंसा तथा अदत्त हो, दोनों के संयोग।।

चौथा उद्देशकः

● शस्त्र-बोध ●

मूलसूत्रम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे, जे असत्थस्स खेयण्णे से दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे।।

पद्यमय भावानुवाद—

दीर्घलोक का शस्त्र सुन, अगर जिसे हो ज्ञात।
वह संयम को जानता, फरमाते जगनाथ।।१।।
संयम भावस्वरूप का, अगर जिसे हो ज्ञान।
दीर्घलोक वह जानता, वही कुशल मतिमान।।२।।

● विषय-परिमाण ●

मूलसूत्रम्—

जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडे त्ति पवुच्चइ।

पद्यमय भावानुवाद—

रे पुरुष! तू प्रमत्त बन, हुआ विषय में लीन।
निश्चय दण्ड तू दे रहा, अरे! जीव आधीन।।

पाँचवाँ उद्देशकः

● मोहित दशा ●

मूलसूत्रम्—

एस लोगे वियाहिए, एत्थ अगुत्ते अणाणाए।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे! अरे! इस लोक में, विषयों की भरमार।
हो आसक्त अगुप्त वह, जिन आज्ञा दे टार।।

जलकाय के शस्त्र
1
2
3

जलकाय के शस्त्र
4
5
6

अग्निकाय के शस्त्र
1
2
3
4

अप्काय व अग्निकाय के शस्त्र

अप्काय के कई शस्त्र बताये गये हैं, जिनके द्वारा यह अप्काय निर्जिव हो जाता है।

1. कुएँ से बाल्टी आदि में भरकर जल निकालने पर।

2. वस्त्र आदि से जल छानने पर।

3. जल से वस्त्र आदि धोने पर।

4. एक प्रकार का जल दूसरे प्रकार के जल में मिलाने पर, जैसे—नदी का जल सरोवर में मिलाने पर।

5. पानी में राख, सोड़ा, सर्फ आदि क्षार द्रव्य मिलाने पर।

6. स्वच्छ जल में गंदा जल मिलाने पर।

इन कारणों से जल-जीवों की हिंसा होती है।

इसी प्रकार अग्निकाय के शस्त्र होते हैं, जैसे—

1. जलती हुई आग में बालू, मिट्टी आदि डालने पर।

2. अग्नि में पानी डालने से।

3. विविध प्रकार की गैस आदि से आग बुझाने पर।

4. अग्नि में गीली घास आदि डालने पर।

छठा उद्देशकः

• प्रत्यक्ष अनुभूति •

मूलसूत्रम्—

मंदस्साविियाणओ।

पद्यमय भावानुवाद—

अल्प बुद्धि से युक्त हैं, अथवा मूरख बाल।
त्रस काया की वेदना, कर अनुभव बेहाल।।

• सुख इच्छुक जीवात्मा •

मूलसूत्रम्—

सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अस्सायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं।

पद्यमय भावानुवाद—

सभी जीव इस सृष्टि के, चाहत हैं सुख-शान्ति।
क्यों नहिं समझो बंधु तुम, क्यों है तुमको भ्रान्ति।।१।।

दुक्ख-असाता-वेदना, नहीं किसी को इष्ट।
महाश्रमण का वचन यह, कर न जीव को नष्ट।।२।।

• मृत्यु-भय •

मूलसूत्रम्—

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य।

पद्यमय भावानुवाद—

सर्व दिशा से हो रहे, त्रस प्राणी भयभीत।
मरने से डरते सदा, करो सभी से प्रीति।।

सातवाँ उद्देशक:

● हिंसा-त्याग ●

मूलसूत्रम्—

आयंकदंसी अहियं ति णच्चा।

पद्यमय भावानुवाद—

परपीड़न अरु अहित का, जिसे हुआ है ज्ञान।
वह हिंसा से विरत है, फरमाते भगवान।।

● सुख-दुख-बोध ●

मूलसूत्रम्—

जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ, जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ।

पद्यमय भावानुवाद—

जो जाने अन्तर्जगत्, वही जानता बाह्य।
पर-निज का ज्ञाता वही, वही श्रमण है मान्य।।

● श्रमण धर्म ●

मूलसूत्रम्—

इह संतिगया दविया णावकंखंति जीविउं।

पद्यमय भावानुवाद—

हैं कषाय जिनके दमित, दयावीर वे सन्त।
करे न हिंसा वायु की, साधन है जीवन्त।।

● दुष्टदशा ●

मूलसूत्रम्—

जे आयारे ण रमंति।

पद्यमय भावानुवाद—

साधक जो आचार में, रमण करे नहिं क्रूर।
वह हिंसा करता सदा, हो संयम चकचूर।।

● वर्तमान दशा ●

मूलसूत्रम्—

आरंभमाणा विणयं वयंति।

पद्यमय भावानुवाद—

हिंसा में अनुरक्त नित, दे संयम उपदेश।
यही आश्चर्य हो रहा, कैसे वे श्रमणेश।।

● आसक्त श्रमण ●

मूलसूत्रम्—

छंदोवणीया अज्झोववण्णा।

पद्यमय भावानुवाद—

विषयों में आसक्त नित, निज इच्छा अनुसार।
पापकर्म करते रहें, कैसे वे अणगार।।

● दुरित द्वार ●

मूलसूत्रम्—

आरंभसत्ता पकरंति संगं।

पद्यमय भावानुवाद—

आरम्भ में आसक्त हो, इच्छा और बढ़ाय।
नये-नये बन्धन बढ़ा, पापकर्म लिपटाय।।

दूसरा अध्ययन : लोक विजय

पहला उद्देशक

• कषाय विषय •

मूलसूत्रम्—

जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे।

पद्यमय भावानुवाद—

शब्दादिक जो विषय हैं, हैं कषाय के हेतु।
कारण मूल कषाय वे, हैं विषयों के केतु।।

• विषयप्रमाद परिमाण •

मूलसूत्रम्—

इति से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो पुणो वसे पमत्ते। तं जहा—माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, सुण्हा मे, सहि सयण संगंथसंथुया मे, विवित्तोवगरणपरिवट्टणभोयणच्छायणं मे, इच्चत्थं गढिए लोए वसे पमत्ते।

पद्यमय भावानुवाद—

विषयों की इच्छा सतत, जिससे बढ़े प्रमाद।
पाता वह परिताप बहु, पुनि-पुनि जन्म विषाद।।१।।

• छन्द घनाक्षरी •

मेरे तात मात अरे, बन्धव भगिनी मेरी,
मेरा पुत्र मेरी पुत्री, मेरी प्यारी नारि जो।
मेरी वधु मेरा मित्र, मेरा है सम्बन्धी जान,
मेरा सहवासी खास करे, मनुहार जो।।२।।

नाक-कान अरु जीभ है, आँख त्वचा लो जान।
पाँच इन्द्रियों के विषय, छोड़ जीव नादान।।३।।

अरे देख निश्चय कथन, उम्र जा रही बीत।
होगा चिन्ताग्रस्त तू, पहले सोचो मीत।।४।।

• अशरण बोध •

मूलसूत्रम्—

णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा।

पद्यमय भावानुवाद—

नहीं शरण संसार में, रक्षा को परिवार।
तू भी तो असमर्थ है, क्यों नहिं करे विचार।।

• वृद्धावस्था बोध •

मूलसूत्रम्—

से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रइए, ण विभूसाए।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे मूढ़ जब वृद्ध हो, जर्जर बने शरीर।
इन्द्रिय तेरी शिथिल हों, बिगड़ेगी तसवीर।।

• संयम हितोपदेश •

मूलसूत्रम्—

इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए। अंतरं च खलु इमं संपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए वओ अच्चेइ जोव्वणं च।

पद्यमय भावानुवाद—

धर्म-शरण सुख दान दे, इसी भाव को धार।
उद्यत हो कल्याण-हित, संयम-पथ स्वीकार।।१।।

मानव-जीवन धन्य है, जीवन का यह ध्येय।
कर संयम की धारणा, यही है तेरा श्रेय।।२।।

जीवन यौवन जा रहा, ज्यों सरिता का वेग।
तत्परता से प्राप्त कर, अहो! धर्म-संवेग।।३।।

• मूढ़ात्मा चिन्तन •

मूलसूत्रम्—

जीविए इह जे पमत्ता। से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवित्ता उत्तासइत्ता। अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे। जेहिं वा सद्धिं संवसति ते वा णं एगया, णियगा तं, पुव्विं पोसेंति, सो वा ते णियगे पच्छा पोसिज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

है प्रमाद में रात-दिन, अज्ञानी इन्सान।
विस्मृत करता धर्म को, कैसे हो कल्याण।।१।।

प्राणी वध की लालसा, करता है दिन-रात।
छेदन-भेदन-हनन से, बाल जीव कहलात।।२।।

ग्रन्थी-भेदन कर रहा, और इन्द्रियाँ छेद।
विषशस्त्रादि प्रयोग कर, पहुँचाये परखेद।।३।।

मूढ़ जीव चिन्तन करे, करना नूतन काम।
नहीं किसी ने जो किया, वह करना अविराम।।४।।

पिता पुत्र पोषण करे, करे पिता का पुत्र।
मिथ्या है अपनत्व यह, तो भी शरण न मित्र।।५।।

• वित्त-बुभुक्षु जीवात्मा •

मूलसूत्रम्—

उवाइयसेसेण वा संन्निहि-संणिचओ कज्जइ, इहमेगेसिं असंजयाणं भोयणाए। तओ से एगया रोग समुप्पाया समुप्पज्जंति। जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा पुव्विं परिहरंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिहरेज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

मानव धन-उपभोग कर, संचित करता शेष।
करे परिग्रह भावना, जोड़े द्रव्य हमेश।।१।।

पुत्र-पौत्र लेंगे इसे, जोड़े धन-भण्डार।
मैं भी लूँगा काम में, भोगूँ सुख-संसार।।२।।

कौड़ी-कौड़ी जोड़कर, काहे होत प्रसन्न।
घेरा डाले रोग रिपु, होगी काया छिन्न।।३।।

• कर्म सत्ता प्रभाव •

मूलसूत्रम्—

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं।

पद्यमय भावानुवाद—

अपना-अपना भोगना, नहीं किसी का साथ।
चाहे सुख या दुक्ख हो, चाहे बालक नाथ।।१।।

निश्चित होगी कर्म की, सत्ता तुझे लखाय।
कर्मदशा भोगे बिना, नहिं छुटकारा पाय।।२।।

रे चेतन! चिन्तन करो, जब आते हैं भोग।
भोग कर्म सम भाव से, यही 'कर्म' का 'योग'।।३।।

• आत्महित साधना •

मूलसूत्रम्—

अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए।

पद्यमय भावानुवाद—

रे! रे! जीवन जा रहा, जैसे पवन प्रचार।
हित-चिंतन में ध्यान दे, नश्वर देह विचार।।१।।

होइ विवेकी नर वही, चाहे निज कल्याण।
आत्मार्थी बनकर रहे, ज्यों आज्ञा भगवान।।२।।

जब तक इन्द्रिय क्षीण नहिं, तब तक बाजी हाथ।
प्रवृत्ति हो सद्धर्म में, बस इतनी-सी बात।।३।।

● पण्डित हितोपदेश ●

मूलसूत्रम्—

खणं जाणाहि पंडिए।

पद्यमय भावानुवाद—

रे! पण्डित क्षणमात्र भी, होइ न तुझे प्रमाद।
उत्तम अवसर प्राप्त यह, बस इतना रख याद।।१।।

भव्य मनुज का लक्ष्य यह, कहते आगमकार।
जब तक है नीरोग तन, कर ले आत्मोद्धार।।२।।

● धर्माचरण पुरुषार्थ बोध ●

मूलसूत्रम्—

जाव सोय-परिण्णाणा अपरिहीणा, णेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा, घाणपरिण्णाणा अपरिहीणा, जीह परिण्णाणा अपरिहीणा, फरिसपरिण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणु वासिज्जासि।। त्ति बेमि।।

पद्यमय भावानुवाद—

जब तक पाँचों इन्द्रियाँ, नहिं हो पातीं क्षीण।
तब तक धर्माराधना, कर ले तू तल्लीन।।१।।

नहीं भरोसा देह का, कब हो जाए नष्ट।
अत: करो धर्माचरण, ज्ञानी भाव स्पष्ट।।२।।

अवसर जब चुक जायेगा, होगा पश्चात्ताप।
सूरि '**सुशील**' शिक्षा सुखद, चिन्तन कर लो आप।।३।।

दूसरा उद्देशक

• अरति दशा •

मूलसूत्रम्—

अरइं आउट्टे से मेहावी, खणंसि मुक्के।

पद्यमय भावानुवाद—

रहे अरति से विमुख जो, आत्मरमण रति लीन।
वह मेधावी पुरुष है, है वह सदा प्रवीन।।१।।

अरति विमुख क्षण मात्र में, हो जायेगा मुक्त।
सूरि '**सुशील**' आगम-कथन, उभयकाल विश्वस्त।।२।।

• वेषधारी श्रमण चरित्र •

मूलसूत्रम्—

अणाणाए पुट्ठा वि एगे णियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा, अपरिग्गहा भविस्सामो, समुट्ठाए लद्धे कामे अभिगाहइ, अणाणाए, मुणिणो पडिलेहंति, एत्थ मोहे पुणो-पुणो सण्णा णो हव्वाए णो पाराए।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो! अहो! जिनराज की, आज्ञा का फरमान।
उससे वह विपरीत ही, मोहावृत इन्सान।।१।।

परिषह अरु उपसर्ग से, शीघ्रतया घबराय।
तब अज्ञानी जीव दें, संयम साज हटाय।।२।।

कितने संयम साध कर, अपरिग्रह व्रत धार।
कामभोग में लिप्त हो, जाते संयम हार।।३।।

चलते वे विपरीत ही, आज्ञारहित जिणंद।
केवल धारक वेष ही, हो जाते स्वच्छन्द।।४।।

विषयभोग सुख प्राप्त हित, करते सतत उपाय।
पुनि पुनि मोहासक्त हो, साधक भाव हटाय।।५।।

नहीं रहे गृहतीर वह, नहीं श्रमण के घाट।
संयम-व्रत जो तोड़ दे, बिगड़ें दोनों ठाट।।६।।

धोबी का कुत्ता लखो, रहे न घर नहिं घाट।
इसी तरह व्रत छोड़कर, होता बारहबाट।।७।।

● कल्याण-मार्ग ●

मूलसूत्रम्—

विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहइ।

पद्यमय भावानुवाद—

विषयों से हैं पार जो, पाले अपना लक्ष्य।
गामी-पार '**सुशील**' मुनि, मुनि जीवन का तथ्य।।१।।

लोभ विजय संतोष से, होइ अकर्मा संत।
सूरि '**सुशील**' कल्याण का, बड़ा सुगम है पंथ।।२।।

जीत लोभ संतोष से, तो तृष्णा भी जाय।
तब ले संयम तात जो, निश्चित शिव-सुख पाय।।३।।

इन्द्रिय-भोग कषाय का, दिखे जिसे परिणाम।
मुनि '**सुशील**' का कथन यह, साधक वह निष्काम।।४।।

● अर्थ-अनर्थ बोध ●

मूलसूत्रम्—

विणा वि लोभं णिक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ, पडिलेहाए णावकंखइ, एस अणगारे त्ति पवुच्चइ। अहो य राओ परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो। से आय-बले से णाइ-बले से सयण-बले से मित्त-बले से पेच्च-बले से देव-बले से राय-बले से चोर-बले से अतिहि-बले से किविण-बले से समण-बले। इच्चेए-हिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंडसमायाणं संपेहाए भया कज्जइ, पावमोक्खो त्ति मण्णमाणे, अदुवा आसंसाए।

पद्यमय भावानुवाद—

लोभ त्याग करके अरे, संयम जब स्वीकार।
कर्मपंक से रहित ही, बने पुरुष अणगार।।१।।

पराधीन हो लोभ में, पाता दुख दिन-रात।
रात-दिवस संयोग रत, धनहित प्राणी घात।।२।।

केवल लालच अर्थ का, मनन यही दिन रैन।
विषयी चोरी भी करे, खोकर निज सुख-चैन।।३।।

बार-बार वह सतत ही, करता कायिक घात।
बलिष्ठ बनने के लिए, ज्ञाति-द्रव्य अरु भ्रात।।४।।

सखा बलिष्ठ प्राप्त हित, अपने जन बलवान।
परभव में बलवान मैं, सुरबल भी बलवान।।५।।

भूपति बल भी प्राप्त हो, बल धारक भी चोर।
मेरा बल महमान भी, कृपण शक्ति महि ओर।।६।।

श्रमण बल भी प्राप्त हो, करनी विविध प्रकार।
लालचवश दण्डित करे, हा! विषयी संसार।।७।।

मेरी इच्छा पूर्ण हो, करे जीव का हन्त।
यही सोच करता अरे, फिर भी भय कब अन्त।।८।।

पापमुक्त हो जाऊँगा, भावी फल की आश।
इह कारण हिंसा करे, सुख का कर विश्वास।।९।।

• आर्य धर्म •

मूलसूत्रम्—

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभेज्जा णेवण्णं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवण्ण एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंतं वि अण्ण ण समणुजाणिज्जा, एस मग्गे आरिएहिं पवेइए, जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

कुशल और मतिमान नर, वस्तु-तत्त्व का ज्ञान।
कथन 'वीर' का समझकर, जीतें लोक जहान।।१।।

करे न करवाये नहीं, हो न समर्थन राग।
तीन करण त्रय योग से, हो हिंसा का त्याग।।२।।

लोक-विजय का मार्ग यह, कहते हैं प्रभु वीर।
लोभ-परिग्रह-प्रमाद से, विलग रहें मुनि धीर।।३।।

तीसरा उद्देशक

• गोत्र चिन्तन •

मूलसूत्रम्—

से असइं उच्चागोए असइं णीयागोए। णो हीणे णो अइरित्ते, णो पीहए। इति संखाए को गोयावाई को माणावाई, कंसि वा एगे गिज्झे तम्हा पंडिए णो हरिसे, णो कुज्झे। भूएहिं जाण पडिलेह सायं।।७७।।

पद्यमय भावानुवाद—

नीच-ऊँच दो गोत्र में, जीव जन्म संसार।
एक बार की बात नहिं, लेता बारम्बार।।१।।

नीच गोत्र का हीन है, क्यों समझे नर रत्न।
उच्च गोत्र का श्रेष्ठ है, नहीं गोत्र से भिन्न।।२।।

दोउ गोत्र के जीव सम, है आत्मधर्म अधिकार।
नीच-ऊँच के भेद पर, मत कर सोच-विचार।।३।।

उच्च जाति भव प्राप्त हित, कर इच्छा परिहार।
अहो! जिनेश्वर वचन पर, कर चिन्तन स्वीकार।।४।।

उच्च गोत्र कुल प्राप्त हो, बनकर वह श्रीमान्।
कौन पुरुष इस लोक में, कर सकता अभिमान।।५।।

बल संग्रह के विविध प्रयोजन

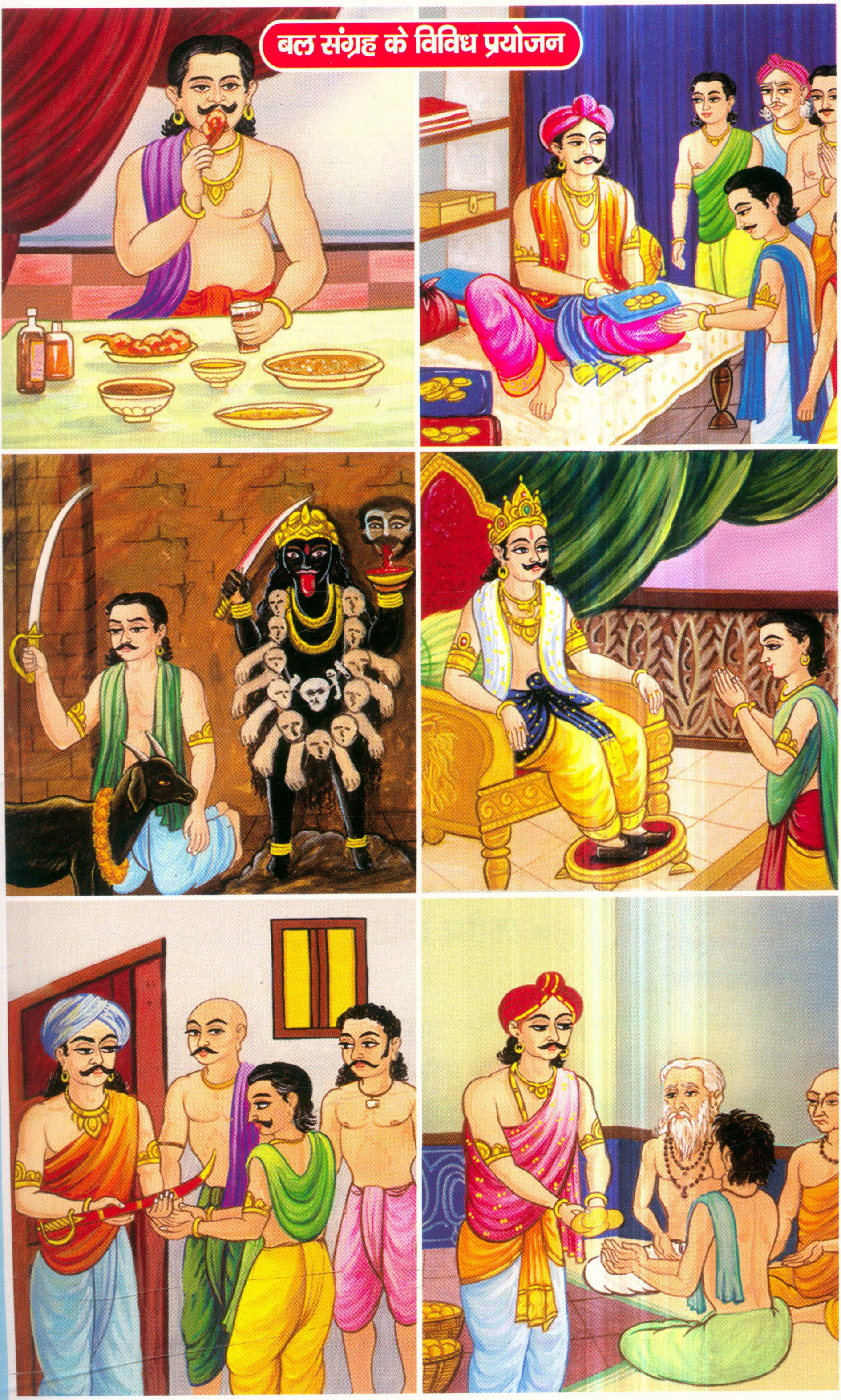

बल संग्रह के विविध कारण

मनुष्य निज स्वार्थ की अपेक्षा से वह विभिन्न प्रकार की हिंसा करता रहता है।

1. **आत्मबल या शरीर बल** को बढ़ाने के लिए माँस, मदिरा, औषधि आदि का सेवन किया जाता है।

2. **जातिबल**—अपना पक्ष मजबूत करने के लिए मित्र, जाति और परिवार वालों को धन आदि देता है।

3. **देवबल**—देवी-देवता आदि को प्रसन्न करने के लिए बलि देता है।

4. **राजबल**—राजा का सम्मान पाने के लिए, आजीविका आदि के लिए राजाओं को प्रसन्न करता है।

5. **चोरबल**—चोरों आदि से सांठगांठ करके उन्हें सहयोग कर उनसे धन प्राप्त करना चाहता है।

6. **अतिथि, कृपण, श्रमण-बल**—आदि को यश-कीर्ति के लिए भोजन, धन आदि देता है।

उच्च गोत्र पाकर अरे, गर्वित हो नहिं विज्ञ।
नीच गोत्र पाकर अरे, दुखी न हो आत्मज्ञ।।६।।

पंडित पुरुष विचार कर, जान लीजिए बात।
सुख की इच्छा जगत् में, करते सबही तात।।७।।

• कर्मचक्र •

मूलसूत्रम्—

समिए एयाणुपस्सी, तं जहा—अंधत्तं बहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं। सह पमाएणे अणेगरूवाओ जोणीओ संघायइ विरूवरूवे फासे पडिसंवेयइ।

पद्यमय भावानुवाद—

पंच समिति से युक्त जो, दे आगम पर ध्यान।
द्रव्य भाव से जानिए, सूरि '**सुशील**' प्रभान।।१।।

अन्धा बहिरा मूक हो, काणा कुबड़ा वक्र।
श्याम कुष्ठ शबलत्व तन, गजब कर्म का चक्र।।२।।

धारण करता जन्म वह, विविध योनियाँ माहिं।
बहु विधि भोगे जीव दुख, भोगे अरु भछताहि।।३।।

• मूढ़ जीव परीक्षा •

मूलसूत्रम्—

से अबुज्झमाणे हओवहए जाईमरणं अणुपरियट्टमाणे। जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खित्तवत्थुममायमाणाणं, आरत्तं विरत्तं मणिकुंडलं सह हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता। ण इत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति। संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मुढे विप्परियासमुवेइ।

पद्यमय भावानुवाद—

व्याधि पीड़ित जहान में, अज्ञानी दिन-रात।
भाजन हो अपमान का, कदम-कदम पर लात।।१।।

पुनि-पुनि तू भव-चक्र में, घूम रहा नादान।
सूरि '**सुशील**' कैसे अरे! कर सकता उत्थान।।२।।

संग्रह की ममता अधिक, खेती और मकान।
नित्य असंयम प्रिय लगे, मूढ़ जीव पहचान।।३।।

मणि-मुक्ता कलधौत तिय, नाना रँग परिधान।
संचय कर आसक्त हो, चेत जीव नादान।।४।।

इन्द्रिय सुख में लीन अति, जीव मूढ़ अरु बाल।
कामभोग फल भोग नित, केवल ममता ख्याल।।५।।

जप-तप-संयम-नियम फल, कब देखा संसार।
मूढ़ जीव कहता अरे, बनकर खूब लबार।।६।।

बाल जीव हर वस्तु को, देख रहा विपरीत।
किन्तु अन्त में होयगी, उसकी बहुत फजीत।।७।।

• संयम-असंयम-बोध •

मूलसूत्रम्—

इणमेव णावकंखंति, जे जण धुवचारिणो।
जाइमरणं परिण्णाय, चरे संकमणे दढे।

सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीवीउ कामा, सव्वेसिं जीवियं पियं, तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजिया णं संसिंचिया णं तिविहेणं जा वि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा वा बहुया वा, से तत्थ गढिए चिट्ठइ, भोयणाए, तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ, तं पि से एगया दायाया वा विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झइ, इति से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण सम्मूढे विप्परियासमुवेइ, मुणिणा हु एयं पवेइयं, अणोहंतरा ए ए, णोय ओहं तरित्तए, अतीरंगमा ए ए, णोय तीरं गमित्तए, अपारंगमा ए ए, णोय पारं गमित्तए, आयाणिज्जं च आयाय तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ, वितहं पप्प अखेयण्णे तम्मि ठाणाम्मि चिट्ठइ।

पद्यमय भावानुवाद—

जो भी साधक मोक्ष हित, लेता संयम धार।
इच्छा नहिं भव-भोग की, धन्य-धन्य अनगार।।१।।

जन्म-मरण के तत्त्व को, अहो! अहो! तू जान।
संयम में दृढ़ता करे, जिन आज्ञा फरमान।।२।।

नियत समय नहिं काल का, ना जाने कब आय।
मुनि '**सुशील**' सम्यक्त्व सँग, संयम शंख बजाय।।३।।

जीवन अपना लगत है, सबको प्रिय संसार।
सभी चाहते सौख्य ही, दुख से है इनकार।।४।।

वध-छेदन से सब डरें, सबको हैं प्रिय प्राण।
जीना चाहत कीट भी, मत मारे नादान।।५।।

विषयी अथवा मूढ़ नर, बाल जीव इन्सान।
द्विपद-चतुष्पद जीव को, सता रहा अनजान।।६।।

काम लगाकर रात-दिन, संचय करता वित्त।
तन से मन से वचन से, दौलत में आसक्त।।७।।

प्रबल परिश्रम धार कर, न्यूनाधिक धन जोड़।
मोह रहा अति भोग हित, रखता और मरोड़।।८।।

सौख्य भोग कर बाद में, बचा हुआ धनमाल।
रक्षक बनता रात-दिन, उसे नहीं कुछ ख्याल।।९।।

आता ऐसा समय जब, धन के भागीदार।
बँटवारा सब जब करें, तब करते तकरार।।१०।।

अथवा सारे द्रव्य को, चोर चुरा ले जाय।
हाथ मसलता वह रहे, बनता नहीं उपाय।।११।।

अथवा उसके माल को, शासक लेता छीन।
हाथ मले अति शोक में, बन जायेगा दीन।।१२।।

अथवा उसका द्रव्य-धन, होय अचानक नष्ट।
निमित्त बहुत प्रकार से, ज्ञानी भाव स्पष्ट।।१३।।

सम्पति उसकी एक दिन, जलकर होती राख।
फिर क्या रहती बाद में, वित्तहीन की साख।।१४।।

क्रूर कार्य करता अरे, अन्य जनों हित आप।
पापोदय से मूढ़ वे, करते घोर विलाप।।१५।।

श्रेय-प्रेय का तनिक भी, रहे नहीं कुछ बोध।
होता हीन विवेक से, करे न सत् की शोध।।१६।।

तीर्थंकर भगवन्त का, निश्चय यह फरमान।
कब समर्थ संसार से, तिर जाये भव यान।।१७।।

तीर्थंकर भगवन्त का, निश्चय यह उद्घोष।
अरे! बाल संसार से, रखते कभी न होश।।१८।।

तीर्थंकर भगवन्त के, वचन यही अति गूढ़।
भवसागर के तीर पर, नहीं पहुँचता मूढ़।।१९।।

द्विपद-चतुष्पद भोग सुख, ग्रहण करे आसक्त।
जिनमार्ग में स्थित नहीं, बाल जीव मन सक्त।।२०।।

अज्ञानी नर है वही, संयम बिन व्यवहार।
असंयमाश्रय ही रहे, निष्फल नर अवतार।।२१।।

• ज्ञानी-अज्ञानी •

मूलसूत्रम्—

उद्देसो पासगस्स णत्थि, बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमिय दुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुप रियट्टइ त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

ज्ञानवान को है नहीं, आवश्यक उपदेश।
मुनि '**सुशील**' संकेत से, समझे अर्थ विशेष।।१।।

राग-द्वेष आसक्त हो, पीड़ा प्रबल कषाय।
अज्ञानी आसक्त नित, विषय भोग ललचाय।।२।।

विषय भोग दुख रूप है, मिलते कष्ट हमेश।
दुखी जीव दुखचक्र में, पाये नित्य कलेश।।३।।

चौथा उद्देशक

• कर्मवाद सिद्धान्त •

मूलसूत्रम्—

तओ से एगया रोग समुप्पाया समुप्पज्जंति, जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते एव णं एगया णियया पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवइज्जा, णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा, जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, भोगामेव अणुसोयंति इहमेगेसिं माणवाणं।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे अज्ञानी मूढ़ नर, करता क्यों अन्याय।
विषयों का सेवन करे, आधि-व्याधि प्रकटाय।।१।।

रहता जिनके साथ में, वे सब प्यारे लोग।
करते जब अवहेलना, अरु निन्दा बेरोक।।२।।

ज्ञानी जन कहते सभी, सदा एक ही बात।
तेरे प्यारे लोग जो, नहीं निभायें साथ।।३।।

समर्थ कब संसार में, दें कि शरण अरु त्राण।
खुद ही सुख-दुख भोगना, बस इतना ले जान।।४।।

कर्मवाद सिद्धान्त का, अनुपम निर्मल ज्ञान।
क्यों घबराये कष्ट से, स्वयं किया यह जान।।५।।

कितने प्राणी रोग में, बन जाते लाचार।
कष्ट भोग का अन्त है, ये ही सत्य विचार।।६।।

भोगों का संचय किया, कर उद्यम दिन-रैन।
भोग न पाता रोग में, होइ शोक बेचैन।।७।।

• आशा-निराशा •

मूलसूत्रम्–

आसं च छंदं च विगिंच धीरे, तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु, जेण सिया तेण णो सिया, इणमेव णाव बुज्झंति जे जणा मोहपाउडा थीभि लोए पव्वहिए, ते भो ! वयंति एयाइं आययणाइं, से दुक्खाए मोहाए माराए णरगाए णरगतिरिक्खाए, सययं मूढे धम्मं णाभिजाणाइ, उदाहु वीरे, अप्पमाओ महामोहे, अलं कुसलस्स पमाएणं, संतिमरणं संपेहाए, भेउरधम्मं संपेहाए, णालं पास, अलं ते एएहिं।

पद्यमय भावानुवाद–

धीर वीर मानव तुझे, कहते आगमकार।
आशा इच्छा भोग की, कर देना परिहार।।१।।

आशारूपी शल्य को, दिया जिगर में डाल।
जिससे दुख तू भोगकर, हो जाता बेहाल।।२।।

प्राप्त किया सुख भोग तू, कर-कर युक्ति अनेक।
किन्तु कभी मिलती नहीं, सुख की कोई टेक।।३।।

सुखाभास को सुख समझ, भटक रहे जो लोग।
नित-नूतन है आत्मसुख, बने न उसका योग।।४।।

भटक रहा है कष्ट में, यह सारा संसार।
सुख की आशा में रहे, देव मनुज अवतार।।५।।

मोहजयी जग जीव जो, उनका कहना एक।
ये साधन उपभोग हित, वनितादिक सुख देख।।६।।

तिया बिना इस देह को, सौख्य प्राप्त कब होय।
यह तो नर की भ्रान्ति है, भ्रान्ति मोह से होय।।७।।

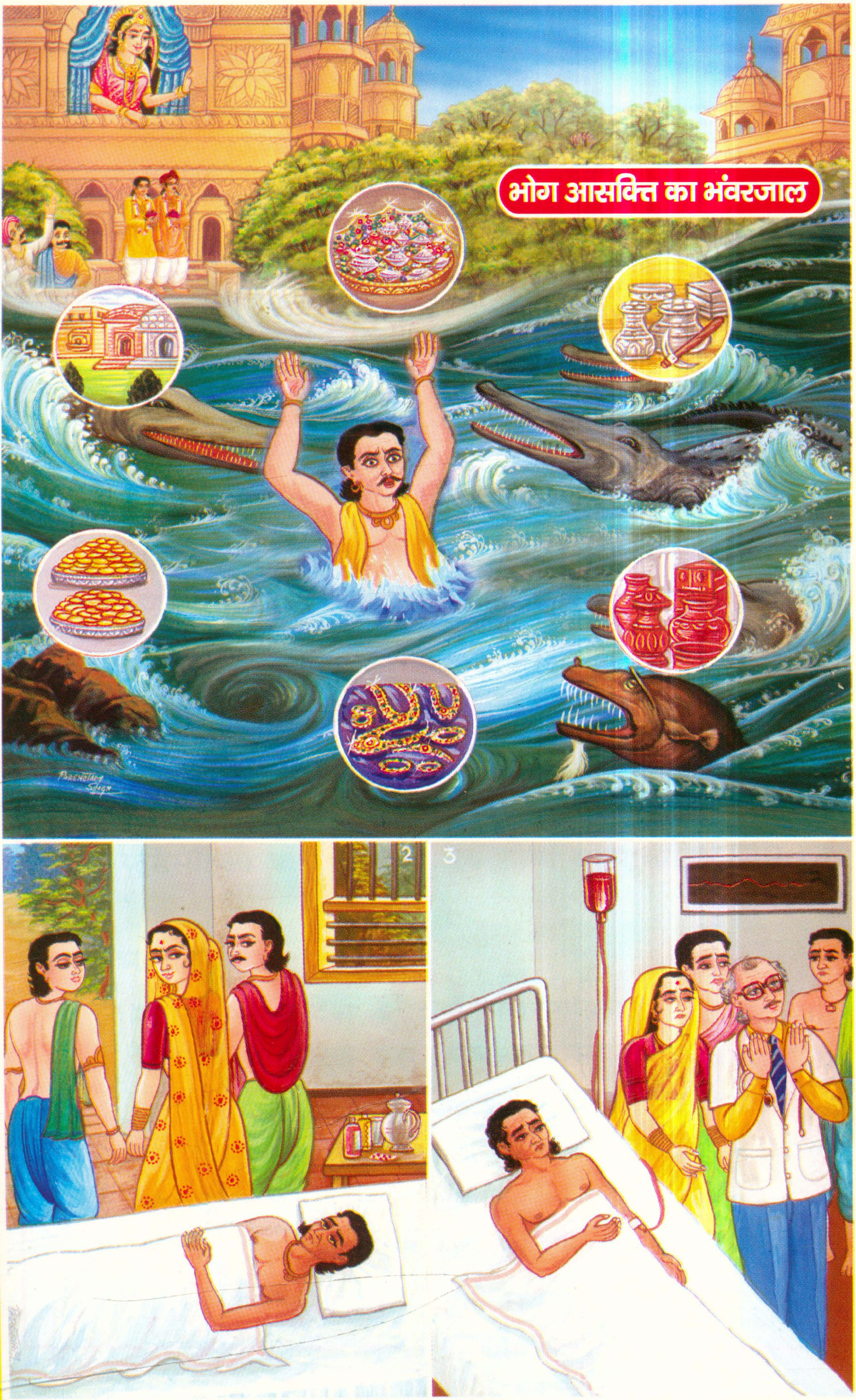
भोग आसक्ति का भंवरजाल
2
3

भोगासक्ति का भँवर जाल

विविध प्रकार के भोगों में आसक्त मनुष्य मणि, सोना, रत्न, स्त्री, पुत्र-पुत्री और समस्त परिवार, दास-दासी, गृह-सेवक, पलंग, आसन, वाहन, वस्त्र, गंध, माला, भवन आदि पर ममत्व रखता है। यह एक प्रकार से आसक्ति का भंवर है।

जब कभी उसके शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तब, जिनके लिए धन संग्रह किया वे स्वजन ही उससे मुँह फेर लेते हैं। वे असहाय छोड़ देते हैं।

परिवार, मित्र, वैद्य आदि भी रोगों से या मृत्यु से उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते। अतः **जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं**—तुम जानो प्रत्येक व्यक्ति का दुःख अपना ही होता है। दूसरा उसे कोई नहीं बाँट सकता।

कारण सातों नरक का, तिर्यंच भव तैयार।
दुख से पीड़ित मूढ़ नर, क्यों न धर्म से प्यार।।८।।

सुना वचन अनमोल यह, महा मोह तिय मूल।
अहो! वीर उद्घोष है, नहिं प्रमाद में फूल।।९।।

अन्तर्दर्शी कुशल वह, एक बात ले जान।
आत्मवान् बनकर रहे, पाये लक्ष्य महान्।।१०।।

आत्म-तत्त्व चैतन्य को, नित्य समझ अविवाद।
नश्वर तेरी देह है, करना नहीं प्रमाद।।११।।

अधिक भोग भी प्राप्त हो, इच्छा हो कब पूर्ण।
जगत् भोग नश्वर सभी, क्यों करता भव चूर्ण।।१२।।

• वीर श्रमण •

मूलसूत्रम्—

एवं पास मूणी ! महब्भयं, णाइवाएज्ज कंचणं, एस वीरे पसंसिए, जेण णिविज्जइ आयाणाए, ण मे देइ ण कुप्पिज्जा, थोवं लद्धुं ण खिंसए, पडिसेहिओ परिणमिज्जा, एयं मोणं समणुवासिज्जासि त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

मुनियों को उपदेश दें, अहो! जिनागमकार।
विषसम भयकारक महा, भोग-रूप संसार।।१।।

वही विवेकी नर सदा, समदर्शी अरु धीर।
तजे विषय रस लालसा, वही पुरुष है वीर।।२।।

जो त्यागी संसार-सुख, वही जीव है धन्य।
देव-लोक गुणगान हो, नर-भव सम नहिं अन्य।।३।।

परिषह सहता धीर मन, वही संयमी सन्त।
महाव्रती संसार में, करें दुखों का अन्त।।४।।

अगर गृही मुनि को न दे, कभी अशन का दान।
फिर भी करना क्रोध नहिं, धर्मवीर मतिमान।।५।।

या फिर श्रावक हाथ से, मिलता अल्पाहार।
तो भी निन्दा मत करो, समभावी अनगार।।६।।

करता गृही निषेध जब, फिर मत जाना द्वार।
लौट चलो निज वास पर, समता ले अनगार।।७।।

वीरव्रती मुनिराज तू, सम्यक् भाव विचार।
व्रताचरण करना सुखद, हो जाए भव पार।।८।।

पाँचवाँ उद्देशक

• परिग्रह निषेध •

मूलसूत्रम्—

जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारम्भा कज्जंति, तं जहा-अप्पणे से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं णाइणं धाईणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए पुढो पहेणाए सामासाए पायरासाए, संणिहिसंणिचओ कज्जइ, इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए।

पद्यमय भावानुवाद—

जिन्हें लोक की है नहीं, किंचित् भी पहचान।
कष्ट-नाश उद्यम करें, इन्द्रिय-सुख अरमान।।१।।

सुत-वनिता परिवारहित, करें शस्त्र उपयोग।
सेवक दासी ज्ञातिजन, हिंसा का लें योग।।२।।

सुबह-शाम के अशन-हित, करते कर्म अनेक।
समारम्भ कर कर्म का, रहते शून्य विवेक।।३।।

संचय नाना वस्तु का, करते लोग अनेक।
अपरिग्रह सिद्धान्त पर, कर ले जरा विवेक।।४।।

• आर्यदर्शी •

मूलसूत्रम्—

समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी अयं संधिति अदक्खु। से णाईए णाइयावए न समणुजाणइ। सव्वामगंधं परिण्णाइ णिरामगंधो परिव्वए।

पद्यमय भावानुवाद—

निर्मल मति है आर्य नर, संयम-पथी उदार।
आर्यदर्शी साधु वह, लखै सत्य उर धार।।१।।

उद्यम संयम पंथ में, रहे आर्य अनगार।
आर्यदर्शी आर्यमति, कार्य समय अनुसार।।२।।

अहो श्रमण! परमार्थ तू, अन्तर मन अवलोक।
मुनि '**सुशील**' तू सहज ही, पा जाये भव रोक।।३।।

तन से मन से वचन से, तीन करण रख संग।
कल्पनीय नहिं वस्तु जो, त्याग-त्याग मुनिरंग।।४।।

आमगंध आहार जो, अथवा होइ अशुद्ध।
जिसमें हो आसक्ति नहिं, वही अशन है शुद्ध।।५।।

प्रत्याख्यान परिज्ञा से, मुनिजन करना त्याग।
विशुद्धाहार ग्रहण कर, विचरित भाव विराग।।६।।

• निदान-निषेध •

मूलसूत्रम्—

अदिस्समाणे कयविक्कएसु, से ण किणे ण किणाव ए किणंतं ण समणुजाणइ, से भिक्खू कालण्णे बलण्णे मायण्णे खेयण्णे खणयण्णे विणयण्णे ससमयण्णे परसमयण्णे भावण्णे, परिग्गहं अममायमाणे कालाणुट्ठाई अपडिण्णे।

पद्यमय भावानुवाद—

क्रय-विक्रय से रहित हो, करे नहीं करवाय।
अनुमोदन भी नहिं करे, वही निष्ठ मुनिराय।।१।।

तीन करण त्रय योग से, क्रय-विक्रय से दूर।
बलज्ञ अरु कालज्ञ वह, वही साधु है शूर।।२।।

जानें जो आचार मुनि, जाने मुनि-व्यवहार।
राग-द्वेष से रहित जो, वही निष्ठ आचार।।३।।

ममता से मोहित नहीं, मुनिवर रहित निदान।
युक्त कालानुसार ही, शुद्ध क्रिया अनगार।।४।।

• त्रिविध मार्ग •

मूलसूत्रम्—

दुहओ छेत्ता णियाइ, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं उग्गहं च कडासणं एएसु चेव जाणिज्जा।।८९।।

पद्यमय भावानुवाद—

राग-द्वेष छेदन करे, करे प्रतिज्ञा कोय।
वर्जित करना श्रमणवर, आराधक तब होय।।१।।

ज्ञान दर्शन चारित्र हित, सत् क्रिया अनुष्ठान।
यही शपथ कल्याणमय, फरमाते भगवान।।२।।

वसन पात्र कम्बल तथा, ओघा अवग्रह पाय।
कटासन उपयोग शुद्ध, ग्रहण करे मुनिराय।।३।।

• आहार विवेक •

मूलसूत्रम्—

लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणिज्जा। से जहेयं भगवया पवेइयं। लाभुत्तिण मज्जिज्जा, अलाभुत्ति ण सोइज्जा, बहुं पि लद्धुण णिहे, परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

शुद्ध अशन जब प्राप्त हो, मात्रा से पहचान।
जैसा प्रभुवर ने कहा, वैसा हो परिमाण।।१।।

अशन-लाभ जब प्राप्त हो, मुनिवर करे न मान।
नहिं मिलने पर शोक भी, तज देना मतिमान।।२।।

अधिक अशन जब प्राप्त हो, संचय करे न सन्त।
संचय के दुष्कृत्य से, दूर रहे गुणवन्त।।३।।

● श्रमणकृत्य ●

मूलसूत्रम्—

अण्णहा णं पासए परिहरिज्जा, एसमग्गे आरिएहिं पवेइए, जहित्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

समताभावी मुनि सदा, करे परिग्रह त्याग।
मुनि '**सुशील**' जिनवर कथन, समता ही मुनि याग।।१।।

संचय के दुर्भाव में, कभी न हो जो लिप्त।
मुनि '**सुशील**' का कथन है, साधू संयम-तृप्त।।२।।

● कामनिषेध ●

मूलसूत्रम्—

कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं। कामकामी खलु अयं पुरिसे। से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ।

पद्यमय भावानुवाद—

महाकठिन संसार में, एक विजय ही काम।
मुनि '**सुशील**' संक्षेप में, कहता पद्य ललाम।।१।।

कामभोग अति अधिक है, अल्प श्वास तन माय।
कह जीवन कैसे बढ़े, होते व्यर्थ उपाय।।२।।

कामभोग की लालसा, रखने वाले लोग।
निश्चय होता शोक तब, जब होता प्राप्त वियोग।।३।।

मर्यादा से भ्रष्ट हो, पद-पद खेद अमाप।
सिर पर कर धर हो दुखी, करता पश्चात्ताप।।४।।

• दीर्घदृष्टि बोध •

मूलसूत्रम्—

आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहोभागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ, तिरियं भागं जाणइ। गडिए लोए अणुपरियट्टमाणे। संधिं विइत्ता इह मच्चिएहिं। एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए। जहा अंतो तहा बाहिं जहा बाहिं तहा अंतो। अंतो अंतो पूइ देहंतराणि पासइ पुढो वि सवंताइं पंडिए पडिलेहाए।

पद्यमय भावानुवाद—

आयतलोचन देखता, ऊर्ध्व-अधो-तिर्यक।
'दर्शी है वह लोक का, संयम-रत निश्शंक।।१।।

विषयभोग संसार में, जो नर हों आसक्त।
परिभ्रमण करते रहें, फरमायें भगवन्त।।२।।

मनुज-जन्म में प्राप्त हो, ज्ञानादिक फल सार।
त्यागो विषयकषाय को, काम-भोग निस्सार।।३।।

महितल में मानव अहो! वही धीर अरू वीर।
श्रमण प्रशंसा योग्य वह, हरे काम रस पीर।।४।।

द्रव्य-भाव द्वय कर्म से, स्वयं मुक्त मतिमान।
मुक्त कराये अन्य को, पर तारक गुणवान।।५।।

बाह्य बन्धन भग्न रत, अन्तर बन्धन भंग।
करता सच्चा वीर वह, लेता भव जल लंघ।।६।।

जैसे परिजन मोह को, पलभर में कर दूर।
वैसे राग कषाय को, करता चकनाचूर।।७।।

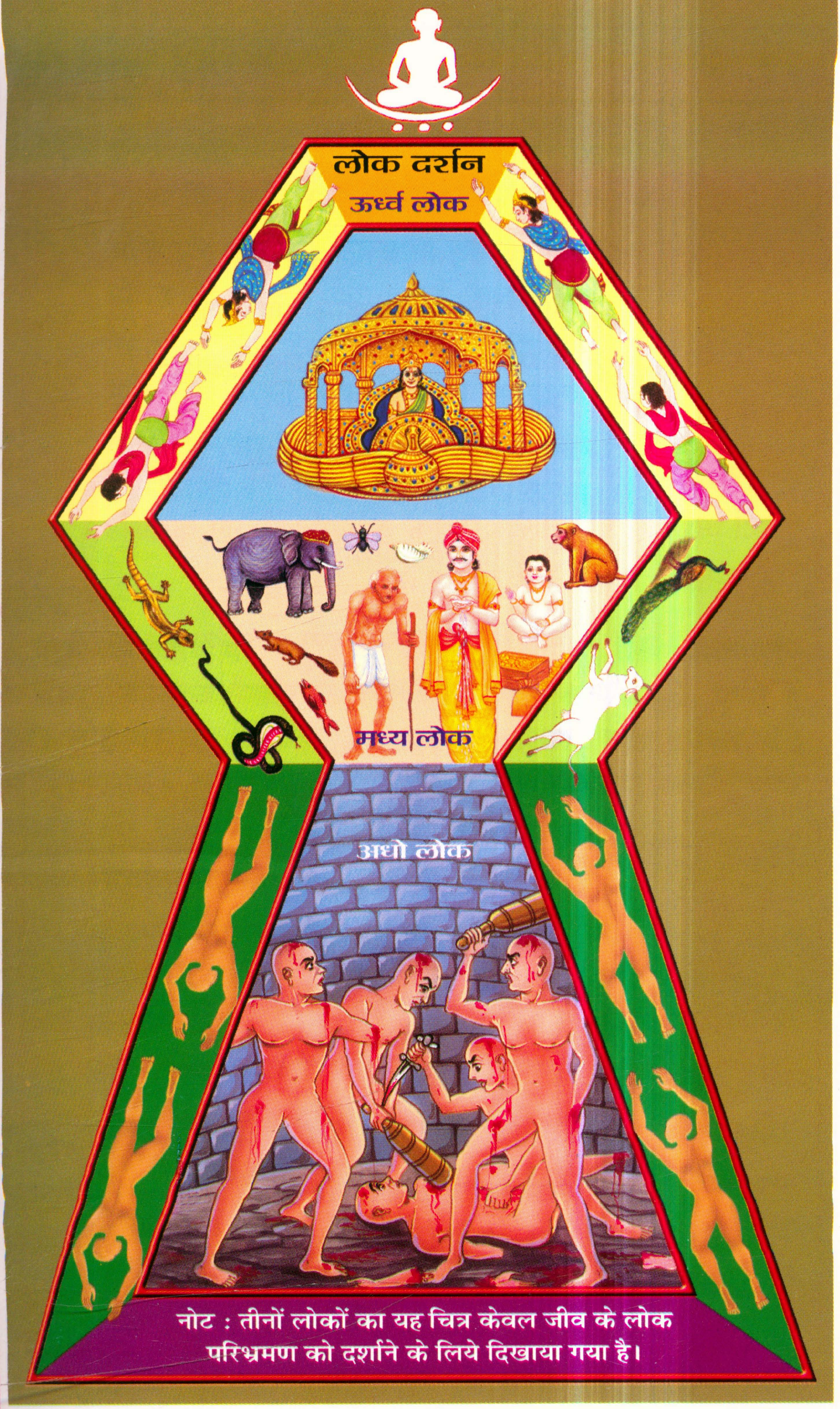
लोक दर्शन
ऊर्ध्व लोक
मध्य लोक
अधो लोक
नोट : तीनों लोकों का यह चित्र केवल जीव के लोक परिभ्रमण को दर्शाने के लिये दिखाया गया है।

लोक चिन्तन

विशाल दृष्टि वाला साधक लोकदर्शी होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है और तिरछे भाग को जानता है। वह यह भी जानता है—(काम-भोग में) आसक्त पुरुष संसार में (अथवा काम-भोग के पीछे) अनुपरिवर्तन—पुनः-पुनः चक्कर काटता रहता है।

लोक का अधो भाग अपने अशुभ कर्मों के कारण सतत घोर कष्टों आदि से पीड़ित है। साधक अधोगति के उन कारणों पर भी विचार करता है और उन्हें छोड़ता है।

लोक के मध्य भाग में तिर्यंच व मनुष्य अपने अशुभ तथा शुभ कर्मों के कारण दुःख से त्रस्त हैं। साधक उन गतियों के कारण का भी विचार करता है। फिर उनका विसर्जन करता है।

लोक के ऊर्ध्व भाग में देवता आदि निवास करते हैं। वे भी विषय-वासना में आसक्त हुए शोक आदि से पीड़ित होते हैं। साधक उस गति के कारणों पर विचार करता है।

लोक में आत्मा ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक में आता है, वहाँ से अधोलोक में जाता है, पुनः तिर्यक् व ऊर्ध्व लोक में गमन करता है। इस प्रकार कर्मों के कारण सतत परिभ्रमण करता रहता है।

इस प्रकार लोक दर्शन या लोक चिन्तन करने वाला मनुष्य, लोक परिभ्रमण से मुक्त हो जाता है।

बाहर-भीतर एक-सी, भीतर-बाहर एक।
है अशुचिमय देह नर, कह '**सुशील**' पद टेक।।८।।

सतत मूत्र मल बह रहा, लख तन के नौ द्वार।
पंडित देह स्वरूप को, समझें भली प्रकार।।९।।

नर-तन साधन-देह है, नहीं भोग-हित देह।
मुनि '**सुशील**' साधन करो, मिलता शिवपुर गेह।।१०।।

जानो देह-अशुद्धि को, जान भोग-परिणाम।
वमन किया क्यों चाहता, मन पर लगा लगाम।।११।।

• बुद्धिमान परीक्षा •

मूलसूत्रम्—

से मइमं परिण्णाय मा य हु लालं पच्चासी, मा तेसु तिरिच्छमप्पाण-मावायए। कासंकसे खलु अयं पुरिसे, बहुमाई कडेण मूढे, पुणो तं करेइ लोहं वेरं वड्ढेइ अप्पणो। जमिणं परिकाहिज्जइ इमस्स चेव पडिवूहणयाए। अमरायइ महासड्ढी अट्टमेयं तुं पेहाए अपरिण्णाए कंदइ।

पद्यमय भावानुवाद—

बुद्धिमान साधक वही, विषय-भोग दुख ज्ञात।
किंचित् इच्छा नहिं करो, स्वप्न काल में भ्रात।।१।।

विषय-भोग सुख त्यागकर, पुनरपि क्यों ललचाय।
जैसे मुख की लार को, अरे कौन खा जाय।।२।।

साधक अपनी आत्मा, सम्यक् दर्शन ज्ञान।
नहीं विमुख चारित्र से, इतना रखना ध्यान।।३।।

सम्यक् दर्शन-ज्ञान से, अगर हुआ प्रतिकूल।
निश्चय ही तू पायेगा, जन्म-मरण के शूल।।४।।

जिससे माया बहुत ही, करता मानव मूढ़।
केवल संकट भोगता, अर्थ न जाने गूढ़।।५।।

पुनि-पुनि भोगे विषय रस, होता कब सन्तोष।
पर जीवों के साथ में, अधिक बढ़ाता रोष।।६।।

नाशवान काया अरे, मूढ़ जीव कब जान।
वृद्धि लिये हिंसा करे, खान-पान परिधान।।७।।

रहना चाहे देव ज्यों, आठों प्रहर जवान।
विषयासक्त मनुज अरे, करता आर्त्तध्यान।।८।।

क्यों कर दुख चिन्तन करे, विषय-भोग परिणाम।
बार-बार कहना यही, करो त्याग अविराम।।९।।

छठा उद्देशक

• दुरितकार्य निषेध •

मूलसूत्रम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं, समुट्ठाए तम्हा पावं कम्मं णेव कुज्जाण कारवेज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

दोष चिकित्सा में यही, जानें श्रमण सुजान।
सावधान त्रय करण से, हिंसा में नादान।।१।।

ग्रहण योग्य ही ग्रहण कर, सभी कर्म सावद्य।
तीन विधा से त्याग हो, साधु न होता अज्ञ।।२।।

• ज्ञानी परीक्षा •

मूलसूत्रम्—

सिया तत्थ एगयरं विप्परामुसइ छसु अण्णयरम्मि कप्पइ। सुहट्ठी लालप्पमाणे, सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ। सएण विप्पमाएण, पुढो वयं पकुव्वइ। जंसिमे पाणा पव्वहिया। पडिलेहाए णो णिकरणयाए, एस परिण्णा पवुच्चइ, कम्मोवसंती।

पद्यमय भावानुवाद—

किसी एक षट्काय के, करे प्राण को नष्ट।
सर्व काय हिंसा करे, ज्ञानी वचन स्पष्ट।।१।।

सुख सांसारिक कामना, करता सावदयोग।
स्वयं कमाये कर्म से, पावे दुख संयोग।।२।।

कारण स्वंय प्रमाद का, पृथक् पृथक् हो रूप।
करता वह भव-वृद्धि को, पाये दुख भव कूप।।३।।

जिससे द्वय विधि कष्ट हो, करे नहीं वह कार्य।
बस इतना संक्षेप में, कहते ज्ञानी आर्य।।४।।

परिग्रह के हेतु से, होता दुक्ख महान।
यह जाने वह साधु है, यही परिज्ञा ज्ञान।।५।।

• संयम विवेक •

मूलसूत्रम्—

जे ममाइयमइं जहाइ से चयइ ममाइयं। से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स णत्थि ममाइयं। तं परिण्णाइ मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसण्णं से मइमं परिक्कमिज्जासि। णारइ सहइ वीरे, वीरे ण सहइ रतिं। जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे ण रज्जइ।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो! वही साधक कुशल, ममत्व मति परिहार।
मोक्षमार्ग द्रष्टा वही, जाने शिवपुर द्वार।।१।।

जाने लोकस्वरूप को, मेधावी इन्सान।
त्यागे संज्ञा लोक की, पाले संयम ज्ञान।।२।।

करे न संयम में अरति, वीर पुरुष आचार।
करे न रति सुख-भोग में, वही निष्ठ अणगार।।३।।

वीर पुरुष रागी नहीं, नहीं विषय से मोह।
क्या तृण भी खंडित करे, खड़ी लाट जो लोह।।४।।

• समत्वदर्शी •

मूलसूत्रम्—

सद्दे फासे अहियासमाणे, णिव्विंद णंदिं इह जीवियस्स।
मुणी मोणं समायाय, धुणे कम्मसरीरगं।।
पंतं लूहं सेवंति, वीरा सम्मत्तदंसिणो।
एस ओहंतरे मुणी तिण्णे, मुत्ते विरए वियाहिए।।

पद्यमय भावानुवाद—

शब्द-रूप में रत रहे, रहे विषय में डूब।
संयम-सुख है एक रस, मुनि 'सुशील' मत ऊब।।१।।

भव-भव भटका है अरे, क्यों नहिं समझे मूढ़।
समता रस का पान कर, यही ज्ञान है गूढ़।।२।।

वीर श्रमण नीरस अशन, सेवन हित स्वीकार।
मुक्त विरत माना गया, तिर जाए भव धार।।३।।

• मुनि-अमुनि बोध •

मूलसूत्रम्—

दुव्वसु मुणी अणाणाए, तुच्छए गिलाए वत्तए, एस वीरे पसंसिए, अच्चेइ लोय संजोगं, एस णाए पवुच्चइ।

पद्यमय भावानुवाद—

आगम आज्ञा-भंगरत, मुनिवर जो स्वच्छन्द।
मोक्षगमन के योग्य नहिं, ज्ञान-ध्यान में मन्द।।१।।

श्रावक पृच्छा जब करे, तो उत्तर नहिं पाय।
आत्म-ग्लानि हो श्रमण मन, पुनि-पुनि वह पछताय।।२।।

वही प्रशंसा योग्य मुनि, कर्म विदारण वीर।
सांसारिक संयोग तज, लँघ जाता भव तीर।।३।।

न्याय मार्ग उपर्युक्त यह, फरमाते भगवन्त।
सूरि '**सुशील**' सुभावना, करे कर्म का अन्त।।४।।

● समभाव-देशना ●

मूलसूत्रम्–

जं दुक्खं पवेइयं इह माणवाणं तस्स दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति, इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी, जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ, जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ।

पद्यमय भावानुवाद–

श्री जिनवर वर्णन किया, दुक्खालय संसार।
कुशल पुरुष यह जानकर, त्यागे जगत् असार।।१।।

कारण है जो कर्म का, साधक पहले जान।
तीन करण त्रय योग से, करते प्रत्याख्यान।।२।।

मोह-वित्त-परिवार सब, कहें लोक-संयोग।
होइ प्रशंसित वह श्रमण, रत जो लोक-वियोग।।३।।

क्या कारण हैं दुक्ख के, जाने मुनि सो दक्ष।
मार्ग बताये मुक्ति का, रहे सदा निष्पक्ष।।४।।

निर्धन और धनाढ्य में, जो मुनि है समद्रष्ट।
धर्मपथी दोनों उसे, रहें एक-से इष्ट।।५।।

पुण्यवान बलवान को, जो देते उपदेश।
वहीं देशना तुच्छ को, फरमाते श्रमणेश।।६।।

दीन हीन नर तुच्छ को, जो देते उपदेश।
वही देशना भूप को, फरमाते श्रमणेश।।७।।

● देशना-विवेक ●

मूलसूत्रम्–

अविय हणे अणाइय माणे, एत्थंपि जाण सेयंति णत्थि, केऽयं पुरिसे कं च णए। एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वओ सव्वपरिण्णाचारी, ण लिप्पइ छणपएणं वीरे, से

मेहावी अणुग्घायणस्स खेयण्णे, जे य बंधपमुक्खमण्णेसी कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के।

पद्यमय भावानुवाद—

धर्मकथा व्याख्यान में, पर-दर्शन प्रतिकार।
अपमानित राजा करे, मुनि पर करे प्रहार।।१।।

वक्ता पहले समझ तू, श्रोतादिक नर कौन।
अविधियुक्त मत बोल तू, उससे अच्छा मौन।।२।।

किस दर्शक की मान्यता, दर्शक की पहचान।
फिर देता उपदेश वह, वक्ता जो धीमान।।३।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल का, करना भाव विचार।
फिर देना उपदेश मुनि, जन-जन का उपकार।।४।।

अधो ऊर्ध्व तिरछी दिशा, जीव कर्म से बन्ध।
वह समर्थ जो कर्म के, अरे! मिटाये फन्द।।५।।

वह साधक सब काल में, मंडित सर्व प्रकार।
सब संवर चारित्र से, भूषित बारम्बार।।६।।

रखता हिंसा से अरति, कुशल कर्म हित नाश।
वह मेधावी वीर है, करता सफल प्रयास।।७।।

अन्वेषण करता रहे, काटन कर्म उपाय।
घाति कर्म का क्षय करे, वही मुक्त बन जाय।।८।।

• कुशल पुरुष कृत्य •

मूलसूत्रम्—

से जं च आरभे ज च णारभे, अणारद्धं च ण आरभे, छणं छणं परिण्णाय लोगसण्णं च सव्वसो।

पद्यमय भावानुवाद—

कुशल पुरुष जो कर रहे, वही कार्य स्वीकार।
कुशल पुरुष जो नहिं करे, वही कार्य इनकार।।१।।

जो भी हिंसा हेतु हो, तज देना वह कार्य।
तीन योग त्रय करण से, करें त्याग अनिवार्य।।२।।
लोक संज्ञा प्रथम तू, रे साधक अवलोक।
त्यागे सूरि '**सुशील**' तो, आत्मा बने अशोक।।३।।

• अज्ञानी दशा •

मूलसूत्रम्—

उद्देसो पासगस्स णत्थि, बाले पुण णिहे। कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

द्रष्टा मुनि को है नहीं, आवश्यक उपदेश।
जाने कारण दुक्ख के, रहता सजग हमेश।।१।।

राग-द्वेष आसक्त जो, पीड़ित रोग कषाय।
काम मनोहर मान्यता, दुक्ख शमन कब पाय।।२।।

द्वय विधि दुख से दग्ध जो, दुक्ख चक्र भटकाय।
अज्ञानी प्रकटित दशा, ज्ञानी जन बतलाय।।३।।

तीसरा अध्ययन : शीतोष्णीय

पहला उद्देशक

• जागृत दशा •

मूलसूत्रम्—

सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति।।

पद्यमय भावानुवाद—

अमुनि अज्ञानी सदा, सोता है दिन-रात।
ज्ञानी मुनि जागें सतत, संयम में रत तात।।

• श्रद्धाचरणविवेक •

मूलसूत्रम्—

लोयंसि जाण अहियाय, दुक्खं, समयं लोगस्स जाणित्ता, इत्थ सत्थोवरए, जस्सिमे सद्दा य रूवा य रसा य गंधा य फासा य अभिसमण्णागया भवंति।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे! अरे! इह लोक में, अहित मोह अज्ञान।
रहे शस्त्र से विरत मुनि, संयम-श्रद्धावान।।१।।

साधक को इह लोक में, समता मुनि-आचार।
घात न करना प्राण की, बस इतना-सा सार।।२।।

छह काया युत लोक यह, करे न शस्त्र प्रयोग।
आश्रय लेना धर्म का, करो सुकृत उद्योग।।३।।

शब्द रूप रस गन्ध अरु, स्पर्श भी लो जान।
पाँचों में समभाव रख, ज्ञानी जन फरमान।।४।।

मूलसूत्रम्—

से आयवं णायवं वेयवं धम्मवं बंभवं पण्णाणेहिं परियाणइ लोयं, मुणीतिवच्चे, धम्मविऊत्ति अंजू आवट्टसोए संगमभिजाणाइ।

पद्यमय भावानुवाद—

● छन्द-घनाक्षरी ●

आत्मवान ज्ञानवान, वेदवान धर्मवान,
ब्रह्मवान महामुनि, मतिज्ञान धारी जो।
सर्वलोक ज्ञाता द्रष्टा, अहो! वही मुनियोग्य,
सरल स्वभाव भाव, उपमानवारी जो।।१।।

मन का भ्रमण द्वार, भोग संग क्षय करे,
आवृत स्तोत्र अर्थ, सूक्ष्म सविचारी जो।
आचार्य '**सुशील**' अहो! आगम रहस्य गूढ़,
रहा विज्ञ आम्नाय, विनय भावधारी जो।।२।।

● निर्ग्रन्थ दशा ●

मूलसूत्रम्—

सीउसिणच्चाई से णिग्गंथे अरइरइसहे, फरूसयं णो वेएइ, जागरवेरोवरए, वीरे एवं दुक्खा पमुक्खसि, जरामच्चुवसो वणीए णरे सयं मूढे धम्मं णाभिजाणइ।

पद्यमय भावानुवाद—

शीत-उष्ण परिषह सहन, संयम रति का ख्याल।
अहो! धन्य निर्ग्रन्थ यह, कर लेता जय काल।।१।।

सदैव जाग्रत मुनि कहा, निवृत्त वैर विकार।
अहो! दुःखों से मुक्त हो, साधक इसी प्रकार।।२।।

वह मनुष्य अति मूढ़ है, रहता धर्मविहीन।
निश्चय ही वह होयगा, जरा-मृत्यु आधीन।।३।।

• भाव निद्रा निषेध •

मूलसूत्रम्—

पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए, मंता एयं मइमं पास आरंभजं दुक्खमिणंत्ति णच्चा, माई पमाई पुण एइ गब्भं, उवेहमाणो सद्दरूवेसु अंजू माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ, अप्पमत्तो कामेहिं, उवरओ पावकम्मेहिं, वीरे आयगुत्ते जे खेयण्णे, जे पज्जवजायसत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे, जे असत्थस्स खेयण्णे से पज्जवजायसत्थस्स खेयण्णे, अकम्मस्स ववहारो ण विज्जइ, कम्मुणा उवाही जायइ, कम्मं च पडिलेहाए।

पद्यमय भावानुवाद—

आतुर-व्याकुल जीव की, दशा देख धर ध्यान।
अप्रमत्त हो विचरण करो, जन्म-मरण पहचान।।१।।

भाव नींद में मस्त जो, उनकी दशा निहार।
बुद्धिमान तू देख ले, मत डूबे मँझधार।।२।।

भाव शयन का ख्याल जो, करता सत्वर छीन।
भाव नींद फल जान तू, रे! रे! पुरुष प्रवीन।।३।।

होता दुख आरम्भ से, देखा विविध प्रकार।
इसीलिए आरम्भ का, कर लेना परिहार।।४।।

मायावी मानव सभी, और प्रमादी लोग।
पुनि-पुनि जननी जठर में, पाते हैं संयोग।।५।।

पंचेन्द्रिय के विषय में, नहीं राग नहिं द्वेष।
वह मानव संसार में, सच्चा सरल विशेष।।६।।

आशंकित जो मृत्यु से, मृत्यु मुक्त बन जाय।
यह प्रयत्न कर लीजिए, आलम्बन सुखदाय।।७।।

छन्द कुंडलिया

अप्रमत्त मुनि ही सदा, काम-भोग से दूर।
उपरत रहता पाप से, आत्मगुप्त मुनि शूर।।
आत्मगुप्त मुनि शूर, जानता क्षेत्र शस्त्र को।
वह साधक क्षेत्रज्ञ, बिसारे राग-द्वेष को।।
विषयों से हो विमुख, हो आत्मरमण में व्यस्त।
वीर-धीर वह श्रमण, आत्मवान ही **अप्रमत्त**।।८।।

दोहा

शब्दादिक सुख के लिए, करते घात अनेक।
जानें पीड़ा को वही, जिनका संयम नेक।।९।।

संयम शुभ आचार में, परिचित परिषह कष्ट।
वही सावद्यकार्य के, ज्ञाता फल जु अनिष्ट।।१०।।

अहो! कर्म से रहित जो, जन्म-मरण हो क्षार।
फिर नहिं आना लोक यह, बन्द होय दुख द्वार।।११।।

होतीं प्राप्त उपाधियाँ, कारण कर्म कहाय।
क्षय हित साधन कीजिए, अहो! मनुज भव पाय।।१२।।

• कर्म मूलोदय •

मूलसूत्रम्—

कम्ममूलं च जं छणं, पडिलेहिय सव्वं समायाय दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे तं परिण्णाय मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसण्णं से मेहावी परक्कमिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

कर्ममूल कारण यही, हिंसा अरु छल-छन्द।
सर्वदेशना ग्रहण कर, पाये निज आनन्द।।१।।

राग-द्वेष से मुक्त जो, देख-देख संसार।
रे! साधक मतिमान तू, शीघ्रतया परिहार।।२।।

संयम-साधन युक्त जो, तजकर विषय कषाय।
सूरि 'सुशील' संक्षेप में, कहा मोक्ष सदुपाय।।३।।

दूसरा उद्देशक

• सम्यक्त्व-महिमा •

मूलसूत्रम्—

जाइं च वुड्ढिंकरं च इहऽज्ज ! पासे, भूएहिं जाण पडिलेह सायं।
तम्हा तिविज्जो परमंत्ति णच्चा, सम्मत्तदंसी ण करेइ पावं।।

पद्यमय भावानुवाद—

हे मानव! तुम आज ही, क्षणभर करो न देर।
जन्म-मरण दुख ज्ञात कर, बन जायेगी खैर।।१।।

सर्व चराचर जगत में, तू अपना सुख देख।
यह चिन्तन कर लीजिए, रखकर परम विवेक।।२।।

मोक्ष मार्ग पहचान तू, रे साधक विद्वान्।
पाप कर्म से विरत हो, बनकर समकितवान।।३।।

ज्ञाता विद्या तीन का, साधक वही सुजान।
पूर्व जन्म के ज्ञान सँग, जन्म-मरण भी जान।।४।।

पर-जीवों के दुक्ख-सुख, निज तुलना पहचान।
तीन बात के ज्ञान को, श्रमण त्रिविद्या जान।।५।।

• बन्धन परिणाम •

मूलसूत्रम्—

उम्मुंच पासं इह मच्चिएहिं, आरंभजीवी उभयाणुपस्सी।
कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति, संसिच्चमाणा पुणरिंति गब्भं।।

पद्यमय भावानुवाद—

अरे! यहाँ नरलोक में, सब जीवों के साथ।
हिंसा से बन्धन बढ़े, तजिए पातिक भ्रात।।१।।

हिंसादिक आरम्भ से, जीवन होइ व्यतीत।
बंधन तोड़ो राग के, तभी होइ भव जीत।।२।।

जो भी मोहित काम में, होता बारम्बार।
संचय करता कर्म का, निष्फल नर अवतार।।३।।

कर्मों से भारी बना, जाता भव सर डूब।
पुनि-पुनि गर्भावास में, दुक्ख पायेगा खूब।।४।।

• बाल संग निषेध •

मूलसूत्रम्—

अवि से हासमासज्ज, हंता णंदीति मण्णइ।
अलं बालस्स संगेणं, वेरं वड्ढइ अप्पणो।।३।।

पद्यमय भावानुवाद—

मानव-कामासक्त जो, रचता हास-प्रसंग।
जीवों का वध कर रहा, क्रीड़ा भाव उमंग।।१।।

अरे अज्ञानी जीव तू, व्यर्थ ही बैर बढ़ाय।
संग करे नहिं बाल का, ज्ञानी जन समझाय।।२।।

• पापभीरु •

मूलसूत्रम्—

तम्हा तिविज्जो परमंति णच्चा, आयंकदंसी ण करेइ पावं।
अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे, पलिच्छिंदिया णं णिक्कम्मदंसी।।

पद्यमय भावानुवाद—

डरता है जो नरक से, पापकर्म भय भीरु।
वही जानता मोक्ष गति, अतिशय युत नर धीरु।।१।।

कर्म अघाती चार जो, जन्म-ग्रहण का द्वार।
अरे धीर कर दूर तू, मूल कर्म जो चार।।२।।

आत्मदर्शी होय तू, कर्मबन्ध तू काट।
मुनि '**सुशील**' साधन सुलभ, अहो! मोक्ष सम्राट्।।३।।

• घाति—अघातिक कर्म •

मूलसूत्रम्—

एस मरणा पमुच्चइ से हु दिट्ठभए मुणी, लोगंसि परमदंसी विवित्त जीवी उवसंते समिए सहिए सया जए कालकंखी परिव्वए, बहुं च खलु पावं कम्मं पगडं।

पद्यमय भावानुवाद—

मुनि '**सुशील**' नित देखता, सातों गुण संसार।
श्रेष्ठ मोक्ष पद प्राप्त हो, संयम नित अतिचार।।१।।

राग-द्वेष से रहित हो, रहे निपट एकान्त।
शान्त समिति हो ज्ञानयुत, साधक मन उपशान्त।।२।।

कभी न हो यमराज से, उत्सुक अरु भयभीत।
संयमचारी शुद्ध मुनि, लेते भवरण जीत।।३।।

सातों गुण धारण करे, वही श्रमण है शूर।
पहला गुण है मोक्ष पद, राग-द्वेष से दूर।।४।।

करे कषायों का शमन, तीजा गुण पहचान।
युक्त समितियाँ पाँच हैं, चौथा ले यह जान।।५।।

संयम-साधन यत्न कर, पंचम गुण यह मान।
समाधिमरण गुण है छठा, सप्तम दर्शन-ज्ञान।।६।।

कर्म वृक्ष का अग्र और मूल

असंयत की चंचल चित्त वृत्ति

कर्म वृक्ष का अग्र और मूल

'**अग्र**' और '**मूल**' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे—वेदनीयादि चार अघाति कर्म अग्र है। मोहनीय आदि चार घाति कर्म मूल हैं।

मोहनीय सब कर्मों का मूल है, शेष सात कर्म अग्र हैं।

साधक कर्मों के अग्र अर्थात् परिणाम और मूल अर्थात् जड़ (मुख्य कारण) दोनों पर विवेक-बुद्धि से चिन्तन करता है। किसी भी दुष्कर्मजनित कष्ट के केवल अग्र = परिणाम पर विचार करने से वह मिटता नहीं, उसके मूल पर ध्यान देना जरूरी है। कर्मजनित दु:खों का मूल मोहनीय कर्म है, शेष सब उसके पत्र-पुष्प हैं।

असंयत की चंचल चित्त वृत्ति

जो मनुष्य धन व भोगोपभोग की वस्तुओं से अपनी इच्छा को तृप्त करना चाहता है, वह ऐसा बाल प्रयास करता है जैसे कोई व्यक्ति झरने की जलधारा से चलनी को भरना चाहता है।

छन्द कुंडलिया

देख चुका संसार-भय, होता मुक्त सुजान।
जन्म-मरण ही दुख महा, ज्ञानी को यह ज्ञान।।
ज्ञानी को यह ज्ञान, कर ले धारण गुण सात।
देखे वह मोक्ष पद, तब राग-द्वेष बिसरात।।
जाने दर्शन-ज्ञान, यह मुनि 'सुशील' का लेख।
ज्ञानी मुनि ले जान, भय जन्म-मरण ले **देख**।।७।।

दोहा

भव अतीत इस जीव ने, किये पाप बहु कर्म।
बिन काटे कल्याण नहिं, जाने क्षय का मर्म।।८।।

● धैर्यवान ●

मूलसूत्रम्—

सच्चम्मि धिइं कुव्वहा, एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं कम्मं झोसेइ।

पद्यमय भावानुवाद—

सावधान करते तुझे, बुधजन आगमकार।
स्थिर हो तू सत्य में, बस इतना-सा सार।।१।।

हितकारी जो जीव का, वह संयम ही सत्य।
संयम से हो लक्ष्य सुख, वह शिव सुख ही नित्य।।२।।

सत्य जिनेश्वर वचन हैं, ले आगम में देख।
जिनवाणी को ग्रहण कर, मिटे कर्म की रेख।।३।।

● चित्र-विचित्र बोध ●

मूलसूत्रम्—

अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहइ पूरइत्तए।

पद्यमय भावानुवाद—

चंचल मन का जीव जो, वह संयम से हीन।
चलनी में जल को भरे, ऐसा है मति हीन।।१।।

उधेड-बुन करता रहे, लिये मनोरथ चित्त।
यत्न करे संसार-सुख, चहे बढ़ाना वित्त।।२।।

अपनी इच्छा पूर्ति हित, निश-दिन करता यत्न।
अनेक मन का मूढ़ नर, खोये संयम-रत्न।।३।।

• अभय-सन्देश •

मूलसूत्रम्—

णिस्सारं पासिय णाणी, उववायं चवणं णच्चा, अणण्णं चर माहणे, से ण छणे ण छणावए छणंतं णाणुजाणए, णिव्विद णंदिं, अरए पयासु, अणोमदंसी, णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

पहले सम्यक् जानकर, फिर करते परिहार।
ज्ञानी इच्छा नहिं करे, विषय-भोग निस्सार।।१।।

मुनि '**सुशील**' संक्षेप में, सर्व जिनागम सार।
देते मुनिवर देशना, जीवों को मत मार।।२।।

दृढ़ मन धारण कीजिए, संयम का आचार।
जन्म-मरण है भय महा, हिंसा सर्व विडार।।३।।

करणयोग से तीन विधि, हिंसा प्रत्याख्यान।
सूरि '**सुशील**' मोक्षगमन, मारग परम प्रधान।।४।।

विषयों से घृणा करो, और न तिय अनुराग।
सम्यक् ज्ञानादिक बनो, पाप कर्म कर त्याग।।५।।

• नरक मार्ग •

मूलसूत्रम्—

कोहाइमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं।
तम्हा य वीरे विरए वहाओ, छिंदिज्ज सोयं लहुभूयगामी।।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो! वीर तू क्रोध तज, तज माया अरु मान।
अरे लोभ फल जानिए, महा नरक उपमान।।१।।

यही देख चिन्तन करो, हो जा पाप विरक्त।
लघुता धारण कर सदा, करे शोक का अन्त।।२।।

• दमन बन्धन बोध •

मूलसूत्रम्—

गंथं परिण्णाय इहऽज्ज ! धीरे, सोयं परिण्णाय चरिज्ज दंते।
उम्मग्ग लद्धुं इह माणवेहिं, णो पाणिणं पाणे समारभेज्जासि।।

पद्यमय भावानुवाद—

रे मानव तू आज ही, बनकर वीर महान।
ग्रंथि परिग्रह आज ही, करो त्याग मतिमान।।१।।

इन्द्रिय अरु मन से बँधा, विषय-रूप संसार।
शीघ्र दमन कर लीजिए, कहते आगमकार। ।।

उन्मज्जन तू प्राप्त कर, ले संयम अविलम्ब।
मुनि '**सुशील**' उद्धार हित, करना नहीं विलम्ब।।३।।

तीसरा उद्देशक

• लोक सन्धि •

मूलसूत्रम्—

संधिं लोयस्स जाणित्ता, आयओ बहिया पास, तम्हा ण हंता ण विधायए, जमिणं अण्णमण्णवितिगिच्छाए पडिलेहाए ण, करेइ पावं कम्मं, किं तत्थ मुणी कारणं सिया ?।

पद्यमय भावानुवाद—

आगम का उपदेश यह, देता बहु आह्लाद।
लोकसंधि को ज्ञात कर, करना नहीं प्रमाद।।१।।

अपने आत्म समान ही, पर सुख-दुख कर ज्ञात।
अत: किसी को मार मत, नहीं करो पर घात।।२।।

आशंका से पापकर्म, जो नहीं करता कोय।
वह साधक मत मानिए, मुख्य भाव ही होय।।३।।

भय-लज्जा-पाखंड से, मुनि हिंसा से दूर।
मात्र दिखावा जान तू, नहिं मुनि संयम शूर।।४।।

● चाह निषेध ●

मूलसूत्रम्—

समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए। अणण्णपरमं णाणी, णो पमाए कयाइवि। आयगुत्ते सयावीरे जायामायाइ जावए।

विरागं रुवेसु गच्छिज्जा महया खुड्डएहिवा, आगइं गइं परिण्णाय दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणे हिं सेण छिज्जइ ण भिज्जइ ण डज्झइ ण हम्मइ कंचणं सव्वलोए।

पद्यमय भावानुवाद—

सब द्वन्द्वों में सम रहे, रहे स्वयं में तुष्ट।
हर्ष-शोक में भाव सम, को सज्जन को दुष्ट।।१।।

शिव सुख से बढ़कर अरे! नहीं वस्तु जग अन्य।
आत्मगुप्त अरु संयमी, मुनि 'सुशील' वह धन्य।।२।।

इन्द्रिय अरु मन को सदा, शीघ्र पाप से रोक।
कर ले रक्षा आत्म की, अहो! वीर बेरोक।।३।।

इन्द्रियगत जो वस्तु है, उनसे होइ विराग।
राग-द्वेष का अन्त कर, कर रूपों का त्याग।।४।।

जीवों की जाने अगति, जाने गति भी साथ।
नहिं छेदन हो लोक में, शिवसुख साधक हाथ।।५।।

उतना लेना अशन तू, जितना तन निर्वाह।
केवल संयम के लिए, रखना यही निगाह।।६।।

दिव्य क्षुद्र जो वस्तु हो, राग करो नहीं द्वेष।
प्राप्त करो वैराग्य शुभ, जन्म-मरण-भय देख।।७।।

शुद्ध साधना होइ यदि, अल्प समय दरम्यान।
कर्मों का क्षय शीघ्र हो, मिलता मोक्ष महान्।।८।।

• चतुर्थ गति-चिन्तन •

मूलसूत्रम्–

अवरेण पुव्विं ण सरंति एगे, किमस्स तीयं किं वाऽऽगमिस्सं।
भासंति एगे इह माणवाओ, जमस्स तीयं तमाऽऽगमिस्सं।।

पद्यमय भावानुवाद–

भावी कभी न सोचना, याद न करो अतीत।
वर्तमान ही देखना, तभी होयगी जीत।।१।।

भूत-भविष्यत् पाट दो, पिसते इनमें मूढ़।
'सुशील' संयम में रमण, यही साधना गूढ़।।२।।

होइ दुर्दशा जीव की, कभी न किया विचार।
यह कारण है भव-भ्रमण, चारों गति संसार।।३।।

तीन लिंग थे पूर्व में, भावी भव हो देव।
बाल जीव चिन्तन यही, कर न विषय की सेव।।४।।

• शत्रु-मित्र विवेक •

मूलसूत्रम्–

का अरई के आणंदे ? इत्थं वि अग्गहे चरे, सव्वं हासं परिच्चज्ज आलीण गुत्तो परिव्वए। पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?।

पद्यमय भावानुवाद—

वर्तमान में सम लखे, अरति और आनन्द।
ऐसा साधक क्षय करे, निज कर्मों के फन्द।।१।।

हास्य तज जितेन्द्रिय बन, मन वच काय समेत।
शुद्ध संयम पालक अहो! वश होगा यम-प्रेत।।२।।

तू ही तेरा शत्रु है, तू ही तेरा मित्र।
बाहर मत खोजो इन्हें, कर ले भाव पवित्र।।३।।

● आत्म निग्रह ●

मूलसूत्रम्—

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि। पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि, सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

पद्यमय भावानुवाद—

कर साधक तू आत्म का, निग्रह कर दिन-रात।
इस विधि दुख से मुक्त तू, हो जायेगा भ्रात।।१।।

एक मात्र मानव अरे, सम्यक् भली प्रकार।
अहो! सत्य को समझ तू, हो जाए भव पार।।२।।

रे मानव धीमान तू, सत्याज्ञा स्वीकार।
तिर जाए भव सिन्धु से, नहिं खाये यम मार।।३।।

● प्रमाद दशा ●

मूलसूत्रम्—

दुहओ जीवियस्स परिवंदण माणण-पूयणाए, जंसि एगे पमायंति।

पद्यमय भावानुवाद—

महा मूढ़ मानव अरे, राग-द्वेष से युक्त।
वंदन-पूजा-मान हित, होता पाप प्रवृत्त।।१।।

होइ प्रवृत्त प्रमाद में, बाल जीव दिन-रात।
नाना पापाचरण कर, अधोलोक दुख पात।।२।।

• प्रपंच निषेध •

मूलसूत्रम्—

सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए, पासिमं दविए लोपालोय पवंचाओ मुच्चइ।

पद्यमय भावानुवाद—

ज्ञानवान साधक कभी, दुख से नहिं घबराय।
व्याकुल नहिं प्रतिकूल से, समता ले अपनाय।।१।।

आतमदर्शी मुक्त है, लोकालोक प्रपंच।
मिलना उसको लक्ष्य तब, शंका करे न रंच।।२।।

चौथा उद्देशक

• एक में अनेक •

मूलसूत्रम्—

जं एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ।

पद्यमय भावानुवाद—

जो कि एक को जानता, वह जाने संसार।
जो नर जाने सर्व को, लिया एक सविचार।।१।।

जो जानेगा एक को, जाने वही अनेक।
'**सुशील**' मुनि जाने सकल, वही जानता एक।।२।।

• उत्कृष्ट दशा •

मूलसूत्रम्—

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भयं। जे एगं णामे से बहुं णामे, जे बहुं णामे से एगं णामे। दुक्खं लोगस्स जाणित्ता वंता लोगस्स संजोगं जंति धीरा महाजाणं, परेणं परं जंति, णावकंखंति जीवियं।

पद्यमय भावानुवाद—

सेवन करे प्रमाद जो, भय होता चहुँ ओर।
अभय फल अप्रमाद में, तिर जाए भव घोर।।१।।

करता एक कषाय क्षय, करे बहुत का नाश।
करे बहुत का नाश जो, कटे एक की फाँस।।२।।

सुख-दुख कारणभूत जो, अरे कर्म संसार।
जान-जान कर त्याग दे, कहते आगमकार।।३।।

रे साधक! इस लोक के, धन सुख ममता त्याग।
धीर वीर तू मोक्ष हित, कर साधन व्रत राग।।४।।

श्रद्धा हो जिनवचन में, वह मेधावी होइ।
वही जानता लोक को, पूर्ण अभय है सोइ।।५।।

शस्त्र-असंयम तीक्ष्ण हैं, इक से बढ़कर एक।
किन्तु न संयम हो कभी, कह '**सुशील**' पद टेक।।६।।

• क्रिया कुशल •

मूलसूत्रम्—

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ, पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ, सड्ढी आणाए मेहावी। लोगं च आणाए अभिसेमच्चा अकुओभयं, अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं।

पद्यमय भावानुवाद—

जो भी साधक मोह को, कर लेता है नष्ट।
करे नष्ट सब कर्म को, रहे न कोई कष्ट।।१।।

श्रद्धावान मनुज अहो! आगम के अनुसार।
बुद्धिमान क्रिया करे, जिनवर का उद्‌गार।।२।।

हिंसा के साधन अरे, महितल अपरम्पार।
किन्तु सार है एक यह, दया बड़ी संसार।।३।।

मूलसूत्रम्—

एयं पासगस्स दंसणे उवरय सत्थस्स पलियतं करस्स, आयाणं णिसिद्धा सगडब्भि। किमत्थि ओवाही पासगस्स ण विज्जइ णत्थि। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

सर्वदर्शी जिनवर प्रभो! फरमाते उपदेश।
विरत होइ सव शस्त्र से, कर्म रहे नहीं शेष।।१।।

क्रोध-मान-माया सभी, जग कषाय सब जान।
मेधावी त्यागे सभी, पाये मुक्ति महान।।२।।

कर्म उपादान रूप जो, कर हिंसा परिहार।
श्री जिनवर का पंथ यह, कहता प्रकट पुकार।।३।।

क्या द्रष्टा को हो कभी, बंधन या कि उपाधि।
उत्तर इसका है यही, द्रष्टा हो निरुपाधि।।४।।

□□

चौथा अध्ययन : सम्यक्त्व

पहला उद्देशक

● धर्म रहस्य ●

मूलसूत्रम्—

एस धम्मे सुद्धे निइए सासए समिच्चि लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

पद्यमय भावानुवाद—

धर्म अहिंसा शुद्धमय, शाश्वत नित्य जहान।
सर्वलोक को जानकर, फरमाया भगवान।।१।।

सर्व जगत् कल्याणमय, श्री जिनवर उद्गार।
सत्य तथ्यमय है यही, यही धर्म का सार।।२।।

● लोकैषणा निषेध ●

मूलसूत्रम्—

तं आइत्तु ण णिहे ण णिक्खिवे, जाणित्तु धम्मं जहा तहा। दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा, णो लोगस्सेसणं चरे।

पद्यमय भावानुवाद—

छल-माया छोड़ो सखे, अनुकंपा व्रत धार।
जैसा धर्म स्वरूप है, वैसा लो स्वीकार।।१।।

आजीवन पालन करो, विषयों से रह दूर।
मुनि 'सुशील' लोकेषणा, कर दे चकनाचूर।।२।।

● अहिंसा प्रबोध ●

मूलसूत्रम्—

जस्स णत्थि इमाणाई, अण्णा तस्स कओ सिया ?।।

पद्यमय भावानुवाद—

अगर अहिंसा धर्म की, नहिं तुझको पहचान।
सभी तत्त्व हैं व्यर्थ सुन, नहिं होगा उत्थान।।१।।

हिंसा में रहते अरे, बनकर बहु तल्लीन।
बार-बार मरते रहे, रहते जन्माधीन।।२।।

• अनभिज्ञ •

मूलसूत्रम्—

समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो जाइं पकप्पेंति।।

पद्यमय भावानुवाद—

जैनेतर जो लोग सब, याकि प्रमादी भाव।
रहें धर्म से भिन्न वे, उनमें कब सद्भाव।।

दूसरा उद्देशक

• आस्रव-संवर विचार •

मूलसूत्रम्—

जे आसवा ते परिसव्वा, जे परिसव्वा ते आसवा, जे अणासवा ते अपरिसव्वा, जे अपरिसव्वा ते अणासवा, एए पए संबु ज्झमाणे लोयं च आणाए अभिसमिच्चा पुढो पवेइयं।

पद्यमय भावानुवाद—

आस्रव कारण जो रहे, वह संवर कहलाय।
संवर कारण जो रहे, वह आस्रव बन जाय।।१।।

संवर व्रत जु विशेष भी, करते बन्धन कर्म।
कारण बन्धन कर्म जो, वही निर्जरा कर्म।।२।।

पद-भंगों को जान ले, श्री जिनवर अनुसार।
कर्मबंध अरु निर्जरा, कह दी भली प्रकार।।३।।

• मृत्यु •

मूलसूत्रम्—

नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि।

पद्यमय भावानुवाद—

जीव काल के गाल में, तो भी काल न खाय।
हो सकता ऐसा नहीं, श्री जिनवर फरमाय।।

• नरकानुभूति •

मूलसूत्रम्—

अहो ववाइए फासे पडिसंवेयंति।

पद्यमय भावानुवाद—

आस्रव का सेवन करें, करें कर्म का बंध।
पड़ें नरक तिर्यंच गति, जो नर हैं मति अंध।।

• अप्रिय-प्रिय विवेक •

मूलसूत्रम्—

सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

प्राणीभूत जीवसत्त्व, अरे इन्हें मत मार।
अनुचित शासन मत करे, यह जिनवर उद्गार।।१।।

पहुँचाओ परिताप नहिं, और न दो तुम कष्ट।
व्यर्थ इन्हें क्यों मारते, प्राण सभी को इष्ट।।२।।

मानव की पहचान है, अनुकम्पा निर्दोष।
यही धर्म सिद्धान्त है, साधक रखना होश।।३।।

क्यों साधक तू प्रथम ही, परदर्शन बन विज्ञ।
उनसे ही पृच्छा करो, जीव-दया अनभिज्ञ।।४।।

मुनि 'सुशील' तुमको कभी, दुक्ख कभी प्रिय होय।
चाह बनी क्यों सुक्ख की, आज बताओ मोय।।५।।

परम अहिंसा धर्म को, कर लेता स्वीकार।
तब उससे कहिए यही, अप्रिय दुख संसार।।६।।

प्राणी भूत जीव सत्व, उनका एक उसूल।
महादुक्ख कारण सतत, जीव-दया प्रतिकूल।।७।।

तीसरा उद्देशक

• तप-प्रबोध •

मूलसूत्रम्—

एवमाहु सम्मत दंसिणो।

पद्यमय भावानुवाद—

तीर्थंकर भगवन्त ने, फरमाया त्रय काल।
समता में ही धर्म है, तज मन मिथ्या चाल।।१।।

शक्ति पराक्रम को कभी, साधक रखे न गुप्त।
तप में रख ले बीरता, बनकर तू निर्लिप्त।।२।।

• राग-विराग •

मूलसूत्रम्—

नरा मुयच्चा धम्मविउत्ति अंजू।।

पद्यमय भावानुवाद—

जैसे मुर्दा देह पर, करते नव श्रृंगार।
अरे राग उसको कहाँ, यह अनुभव उर धार।।१।।

अनासक्त जो देह से, वही जानता धर्म।
जो जानेगा धर्म को, वही सरल यह मर्म।।२।।

हिंसा दुख का मूल है, होते दुख उत्पन्न।
इसीलिए कर लीजिए, हिंसा अघ को छिन्न।।३।।

• कर्मधुनन •

मूलसूत्रम्—

इह आणाकंखी पंडिए। अणिहे एग मप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं। जहा जुण्णाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थइ, एवं अत्तसमाहिए अणिहे। विगिंच कोहं अविकंपमाणे।

पद्यमय भावानुवाद—

जिनशासन आज्ञा चले, पंडित वही कहाय।
निज स्वरूप देखे सतत, कंपित करे कषाय।।१।।

चेतन तन से भिन्न है, इसी सत्य को जान।
तप से धुनो शरीर को, तब होगी पहचान।।२।।

साधक अपनी देह को, जीर्ण करो दिन-रात।
जीर्ण-शीर्ण करते रहो, समभावों के साथ।।३।।

जैसे पावक काष्ठ को, कर देती है नष्ट।
आत्मसमाधि से जुड़ा, पा लेता फल इष्ट।।४।।

राग-द्वेष से रहित जो, अविचल करता ध्यान।
कर्मकाष्ठ को भस्मकर, बनता ईश महान।।५।।

• क्रोध दशा •

मूलसूत्रम्—

इमं णिरुद्धाउयं संपेहाए, दुक्खं च जाण अदु आगमेस्सं, पुढो फासाइं च फासे, लोयं च पास विफंदमाणं जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया, तम्हा अइविज्जो णो पडिसंजलिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

क्षण भंगुर नर देह है, जिसको है यह बोध।
रहे अकम्पित वह सदा, अरु छोड़ेगा क्रोध।।१।।

क्रोधी मानव आयु का, करता सत्वर नाश।
यही जानकर त्याग दे, फरमाते अविनाश।।२।।

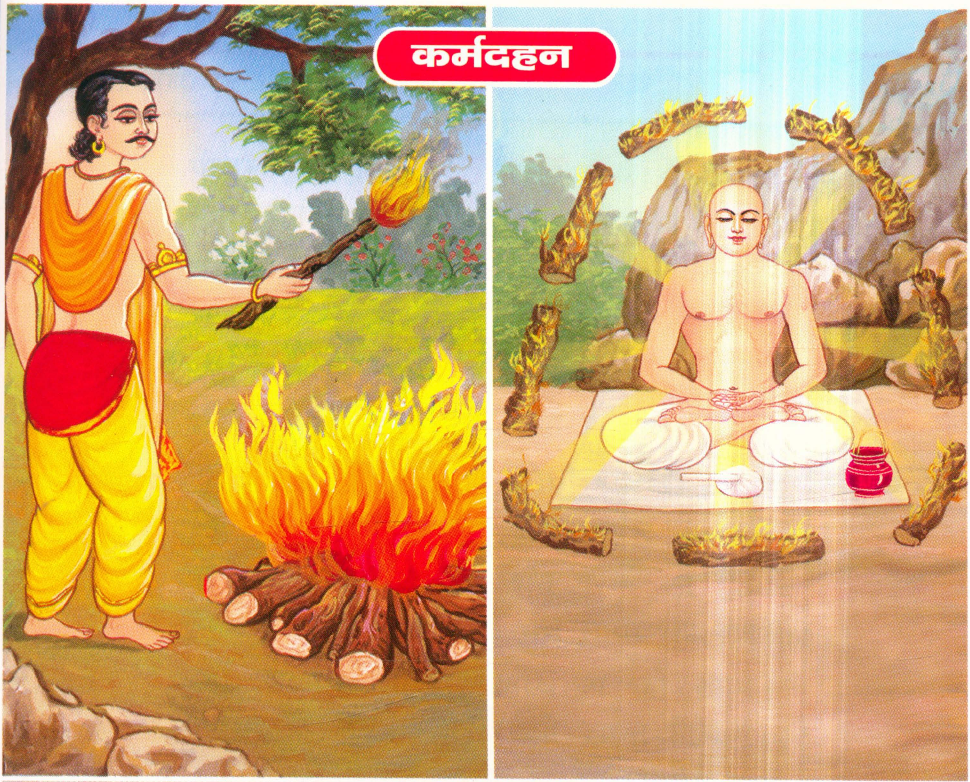
कर्मदहन

आत्मयुद्ध
सयंम
विवेक

कर्म दहन

1. जैसे अग्नि पुराने काष्ट को शीघ्र जला डालती है, वैसे ही समाधिस्थ आत्मा वाला राग-द्वेष रहित पुरुष प्रकम्पित कर्मशरीर को (तप एवं ध्यान रूपी अग्नि से) शीघ्र जला डालता है।

आत्म-युद्ध

2. हे साधक! तू अन्य किसी के साथ युद्ध मत कर, अष्ट कर्म तथा पाँच प्रमादरूपी शत्रु जो तुझे पराजित करने के लिए विविध-विचित्र रूपों में घेरे हुए हैं तू उन शत्रुओं को जीत! तेरे हाथ में विजय शस्त्र होगा। संयम और विवेक के द्वारा इन शत्रुओं को जीतने का कुशल पुरुषों ने उपदेश दिया है। इसे ही आत्म-युद्ध कहा जाता है।

पीड़ा पाये क्रोध से, उभय लोक में बन्धु।
यही जान तज क्रोध तू, तिर जाये भव सिन्धु।।३।।

वर्तमान में क्रोध से, पाये दुख संसार।
भावी जीवन में मिले, इससे कष्ट अपार।।४।।

यही जानकर त्याग दे, क्रोध पाप का मूल।
लोक क्रोध से जल रहा, ज्यों पावक से तूल।।५।।

पीड़ा के प्रतिकार हित, क्रोधी इत-उत भाग।
जहाँ-तहाँ अपमान हो, करते लोग मजाक।।६।।

पाये क्रोध निमित्त तू, जान नरक का हेतु।
त्याग क्रोध को पाय नर, भव सागर का सेतु।।७।।

नहीं जलाये आत्मा, क्रोधरूप जो आग।
आगम के मर्मज्ञ जो, रखते शान्त दिमाग।।८।।

चौथा उद्देशक

• नव दीक्षित प्रबोध •

मूलसूत्रम्—

आवीलए पवीलए णिप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं, तम्हा अविमणे वीरे, सारए समिए सहिए सया जए, दुरणुचरो, मग्गो वीराणं अणियट्ट गामीणं, विगिंच मंससोणियं, एस पुरिसे दविए वीरे, आयाणिज्जे वियाहिए, जे धुणाइ समुस्सयं वसित्ता बंभेचेरंसि।

पद्यमय भावानुवाद—

नवदीक्षित मुनि के लिए, देते जिन उपदेश।
पूर्व योग संयोग सब, करे कष्ट अवशेष।।१।।

उपशम रस को प्राप्त कर, पीड़ित करे शरीर।
विषयों और कषाय से, दूर रहे मुनि वीर।।२।।

संयम पालन भावना, पाँच समिति से युक्त।
उद्यम ज्ञानअराधना, क्रिया कुशल उपयुक्त।।३।।

मोक्षमार्ग में कष्ट जो, सहन करो मुनि वीर।
मांस रक्त इस देह से, कर ले अल्प सुधीर।।४।।

शुद्ध संयम में रमे, मुनि जीवन-पर्यन्त।
मानव-भव की सफलता, पा लेता मतिवन्त।।५।।

ब्रह्मचर्य सुख-दुर्ग में, करते श्रमण निवास।
कर्मों को कमजोर कर, पा लेते शिव-वास।।६।।

● मोह तिमिर ●

मूलसूत्रम्—

तमंसि अवियाणओ आणाए लंभो णत्थि, त्ति बेमि।।

पद्यमय भावानुवाद—

मोहरूप अँधियार में, पड़े हुए जो लोग।
मुक्तिमार्ग को नहिं लखे, रसिक बना सुख भोग।।१।।

आज्ञा जो तीर्थेश की, लाभवन्त कब होय।
भटक रहा भव सिन्धु में, कूल न पावे कोय।।२।।

● बोधि तत्त्व ●

मूलसूत्रम्—

जस्सणत्थि पुरा पच्छा, मज्झे तस्स कुओ सिया ?

पद्यमय भावानुवाद—

जिसका आदि न अन्त है, मध्य कहाँ से होय।
बोधि भाव धारण करो, कहते ज्ञानी तोय।।१।।

अपने-अपने कर्म जो, देते फल संसार।
संचय अशुभ न कीजिए, जो चाहो सुख सार।।२।।

ज्ञानवान सम्यक् अहो, नहीं उपाधिक होय।
मुनि '**सुशील**' महिमा मही, कहते जिनवर तोय।।३।।

पाँचवाँ अध्ययन : लोकसार

पहला उद्देशक

• त्याग रहस्य •

मूलसूत्रम्—

आवंती केयावंती लोयंसि विप्परामुसंति अट्ठाए अणट्ठाए वा, एएसु चेव विप्परामुसंति, गुरुसे कामा, तओ से मारस्स अंतो, जओ से मारस्स अंतो तओ से दूरे, णेव से अंतो णेव से दूरे।

पद्यमय भावानुवाद—

कारण अथवा व्यर्थ ही, हिंसा करते लोग।
ऐसे मानव को सदा, मिलें नरक के भोग।।१।।

घात करें जिस जीव का, वही जन्म पा जाय।
चारों गति संसार में, फिर-फिर गोते खाय।।२।।

अज्ञानी नर के लिए, दुष्कर भोग-विराग।
मरने पर मिलता नहीं, उसको मोक्ष पराग।।३।।

विषयों के सुख निकट नहिं, नहिं विषयों से दूर।
फिर कैसे त्यागी कहें, समझो आगम मूर।।४।।

मूलसूत्रम्—

से पासइ, फुसियमिव कुसग्गे पणुण्णं णिवइयं वाएरियं, एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अविया णओ, कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ, मोहेण गब्भं मरणाइ एइ, एत्थ मोहे पुणो पुणो।

पद्यमय भावानुवाद—

नीरबिन्दु कुश नोंक पर, चपल वायु का झोंक।
जल-कण झर अवनी पड़े, त्यागे कुश की नोंक।।१।।

बाल मन्द अरु मूढ़ का, उपमित जीवन देख।
मुनि 'सुशील' जीवन मिटे, मनहुँ धूल की रेख।।२।।

क्रूर कार्यरत मूढ़ जन, करता दुख उत्पन्न।
सुख अर्थी बनकर अरे, दुक्ख प्राप्त हो खिन्न।।३।।

पुनि-पुनि कारण मोह से, जन्म-मरण संसार।
बार-बार भव-चक्र में, तू तजि मोह विकार।।४।।

• संशय विवेक •

मूलसूत्रम्—

संसयं परियाणओ संसारे परिण्णाए भवइ।

पद्यमय भावानुवाद—

जो संशय को जानता, वह जाने संसार।
जो संशय नहिं जानता, नहिं जाने जगसार।।

• दोहरी मूर्खता •

मूलसूत्रम्—

जे छेए से सागारियं ण सेवए, कट्टु एवमवियाणओ बिइया मंदस्स बालया, लद्धा हुरत्था, पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए।

पद्यमय भावानुवाद—

मुनि '**सुशील**' हैं निपुण वह, सत्य अर्थ स्वीकार।
करे न सेवन भोग जो, लेता मैं बलिहार।।१।।

मैथुन सेवन कर अरे, रखता है जो गुप्त।
दुहरी करता मूर्खता, कभी न हो विश्वस्त।।२।।

प्राप्त भोग फल का अरे! सोचो तुम परिणाम।
निश्चय दुखप्रद जानकर, तज तू त्रयविध काम।।३।।

• अविद्या भवचक्र •

मूलसूत्रम्—

सययं मूढे धम्मं णाभिजाणइ, अट्टा पया माणव ? कम्मकोविया जे अणुवरया अविज्जाए पलिमुक्खमाहु आवट्टमेव अणुपरियट्टंति। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

रे मानव तू मूढ़ अस, सुने न धर्मक मर्म।
कभी नहीं तू जानता, नहीं तुझे कुछ शर्म।।१।।

सब प्राणी रस विषय से, पीड़ित बारम्बार।
बहुत कुशल हैं कर्म में, बढ़ा रहे संसार।।२।।

आस्रव से दूरी नहीं, अरु है चित्त मलीन।
भ्रान्त ज्ञान से मोक्ष हो, बतलाते मतिहीन।।३।।

भंवररूप भवसिन्धु में, पुनि-पुनि चक्कर खाय।
सूरि '**सुशील**' चतुर्थ गति, कहो अन्त कब आय।।४।।

दूसरा उद्देशक

• सनातन मार्ग •

मूलसूत्रम्—

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए उट्ठिए णो पमायए।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो! सनातन मोक्ष पथ, आर्य पुरुष बतलाय।
मुनि '**सुशील**' पुरुषार्थ से, निश्चय शिवसुख पाय।।१।।

अप्रमत्त नर ही करे, निज-पर का कल्याण।
प्रमाद न कबहू कीजिए, फरमाते भगवान।।२।।

• प्रमाद निषेध •

मूलसूत्रम्—

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, पुढों छंदा इह माणवा।

पद्यमय भावानुवाद—

अपना-अपना होत है, सबका सुख-दुख जान।
मानव त्याग प्रमाद को, कहते हैं भगवान।।१।।

भिन्न-भिन्न मानव यहाँ, नाना भाव विचार।
सुख-दुख भी बहुरूप ही, होते कर्माधार।।२।।

• कर्म उदय •

मूलसूत्रम्—

एस समिया परियाए वियाहिए, जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उदाहु ते आयंका फुसंति, इइ उदाहु वीरे ते फासे पुट्ठो हियासए, से पुव्विपेयं पच्छापेयं, भेउरधम्मं विद्धंसणधम्ममधुवं अणिइयं असासयं, चयावचइयं विप्परिणामधम्मं, पासह एयं रूवसंधिं।

पद्यमय भावानुवाद—

पाप कर्म आसक्त नहिं, तब भी संभव कष्ट।
फरमाते प्रभु वीर हैं, समता हो तब इष्ट।।१।।

निश्चित ही तन छूटता, घट-बढ़ होत जरूर।
जानो देह-स्वभाव को, करना नहीं गरूर।।२।।

धीर जनों ने यूँ कहा, समता से सह कष्ट।
आगे-पीछे भोगना, कितनी बात स्पष्ट।।३।।

यह औदारिक देह है, हो विध्वंस विनष्ट।
नहीं ध्रुव और नित्य यह, कभी न शाश्वत इष्ट।।४।।

चय-अपचय से युक्त ये, विविध बने परिणाम।
दृष्टिकर पूर्वोक्त पर, रे! रे! आत्माराम।।५।।

• संवर फलादेश •

मूलसूत्रम्—

विप्पमुक्कस्स णत्थि मगो विरयस्स।

पद्यमय भावानुवाद—

तन-धन अरु परिवार से, जिनका मोह विनष्ट।
मुनि 'सुशील' पायें वही, अन्तिम फल जो इष्ट।।१।।

संवर से मंडित मनुज, नरक तिर्यंच न जाय।
सार तत्व उपदेश यह, श्री जिनवर फरमाय।।२।।

• परिग्रह फलादेश •

मूलसूत्रम्—

एगेसिं महब्भयं भवइ।

पद्यमय भावानुवाद—

एक परिग्रह विश्व में, करता भय उत्पन्न।
और परस्पर कलह हो, देह प्राण हो भिन्न।।१।।

एक परिग्रह विश्व में, पहुँचाता संताप।
सारे रिश्ते खत्म हों, बढ़ता महितल पाप।।२।।

मूर्च्छा या आसक्ति जब, होइ वस्तु में तात।
कारण वस्तु ममत्व है, संग्रह की सौगात।।३।।

• आत्म-विज्ञान •

मूलसूत्रम्—

से सुपडिबद्धं सूवणीयंति णच्चा पुरिसा परमचक्खू विपरक्कम, एएषु चेव बंभचेरं ति बेमि।।

पद्यमय भावानुवाद—

मोक्ष दृष्टि सम्पन्न तू, कर ऐसा पुरुषार्थ।
भयं महा यह जानकर, त्याग परिग्रह स्वार्थ।।१।।

अपरिग्रही अरु संयमी, ब्रह्मचर्य रत जोइ।
कहता हूँ मैं तथ्य यह, अरु समझाऊँ तोइ।।२।।

मैंने यह अनुभव किया, और सुना यह सत्य।
मोक्ष-बन्ध दोनों रहें, तेरे भीतर नित्य।।३।।

सुना और अनुभव किया, कहता हूँ प्रत्यक्ष।
बंध-मोक्ष तव आत्म में, तथ्य सत्य निष्पक्ष।।४।।

रे साधक तू मौन धर, सम्यक् भाव पुकार।
प्रगटित सिद्धि 'सुशील' मुनि, होती बारम्बार।।५।।

विरत परिग्रह पाप से, उसका उत्तम ज्ञान।
जो नर विषयाधीन हो, महामूढ़ इन्सान।।६।।

तीसरा उद्देशक

• संयम स्वरूप •

मूलसूत्रम्—

जे पुव्वुट्ठाई णो पच्छाणिवाई, जे पुव्वुट्ठाई पच्छाणिवाई, जे णो पुव्वुट्ठाई णो पच्छाणिवाई, सेवि तारिसिए सिया, जे परिण्णाय लोग मण्णे सयंति।

पद्यमय भावानुवाद—

साधक तीन प्रकार के, क्या तीनों में फर्क।
स्वर्ग-मोक्ष इनको मिलें, अरु संभव है नर्क।।१।।

पहले संयम साध कर, कभी न गिरते लोग।
जीवन भर उद्यत रहें, काटें भव के रोग।।२।।

दूजे उठ उद्यम करें, फिर गिर जाते तात।
संयम-मणि को त्याग दें, दिन भी इनको रात।।३।।

तीजे तो उठते नहीं, नहिं गिरने का प्रश्न।
संयम को जाने नहीं, कभी न करे प्रयत्न।।४।।

सिंह तुल्य घर त्याग कर, दीक्षा ले स्वीकार।
मृगांक सम संयम अहा! पाले निर अतिचार।।५।।

प्रथम भंग से युक्त जो, वे ही श्रमण महान्।
गौतम धन्नादिक अहो! पंचानन उपमान।।६।।

सिंह तुल्य घर त्याग कर, बनते अन्त सियार।
संयम हीरा फेंककर, करें विषय से प्यार।।७।।

उक्त भंग से युक्त जो, वे मुनि महा मलीन।
कंडरीक सम ये श्रमण, अन्त भोग में लीन।।८।।

• कषाय विजय •

मूलसूत्रम्—

इमेण चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ ?

पद्यमय भावानुवाद—

साधक कर्म-शरीर से, युद्ध करो दिन-रात।
नहीं लोभ हो अन्य से, कर ले मानव ज्ञात।।

• भाव युद्ध प्रबोध •

मूलसूत्रम्—

जुद्धारिहं खलु दुल्लहं।

पद्यमय भावानुवाद—

भावयुद्ध के योग्य तनु, औदारिक कहलाय।
निश्चय दुर्लभ प्राप्त हो, कुशल पुरुष फरमाय।।१।।

जीतो साधक समर तुम, जन्मजात रिपु मार।
सभी शत्रु तुझमें छिपे, कभी न होगी हार।।२।।

तप संयम नर देह से, हो जाये हितकार।
अन्तर अरि जन जीत तू, यह अवसर इस बार।।३।।

सुयश आदि की कामना, सुन्दर प्राप्त शरीर।
दुरित न करना लोक में, जो चाहे भव तीर।।४।।

शुभ कर्मों के उदय से, दुर्लभ अवसर पाय।
मगर मूढ़ भव भोग में, व्यर्थ हि जन्म गँवाय।।५।।

• पराक्रम बोध •

मूलसूत्रम्—

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं तं णो अण्णेसी, जं सम्मंति पासह तं मोणंति पासह, जं मोणंति पासह तं सम्मंति पासह, ण इमं सक्कं सिढिलेहिं आद्दज्जमाणेहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

संयम धन का रूप लख, जो स्वामी कहलाय।
सर्व चराचर तत्व का, बोध सुखद उर माय।।१।।

जाने सम्यक् ज्ञान जो, जाने वही मुनित्व।
जाने अगर मुनित्व को, वह जाने सम्यक्तव।।२।।

दुष्कर संयम पालना, हर प्राणी अधिकार।
सूरि '**सुशील**' पराक्रमी, संयम का हकदार।।३।।

अरे चराचर विषय में, रखता अगर ममत्व।
मुनि '**सुशील**' साधक नहीं, कभी न पाये तत्त्व।।४।।

संयम अरु संसार का, सम्यक् भाव विचार।
वह संयम पालन करे, अहो! निपुण अणगार।।५।।

रूक्ष अशन सेवन करे, सम्यक्दर्शी वीर।
कर्म नष्ट तप से करे, पा जाये भव तीर।।६।।

चौथा उद्देशक

• एकाकी विहार निषेध •

मूलसूत्रम्—

गामाणुगामं दुइज्जमाणस्स दुज्जायं दुप्परक्कंतं भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो।

पद्यमय भावानुवाद—

अव्यक्त अवस्था में करे, ग्रामऽनुग्राम विहार।
पहले हो परिपक्व तब, एकल गमन विचार।।१।।

माने नहिं जिन वचन अरु, साधन–पथ प्रतिकूल।
दुष्पराक्रम यह श्रमण, करना नहिं तू भूल।।२।।

जिनागम अध्ययन नहीं, अल्प अवधि दरम्यान।
विज्ञ नहीं आचार से, नहीं ध्यान विज्ञान।।३।।

अरे निकलकर गच्छ से, करता श्रमण विहार।
दोषयुक्त जीवन रहे, देते सब धिक्कार।।४।।

होंइ उपसर्ग पंथ में, जिससे संयम भ्रष्ट।
नहीं चतुर्विध संघ में, श्रद्धा होगी पुष्ट।।५।।

श्रमण नहीं गीतार्थ यदि, और नहीं परिपक्व।
अरे अकेला विचरना, मुनि का नहीं महत्व।।६।।

बाल अवस्था सन्त की, देख करें अपमान।
दोषारोपण हो कभी, जिससे संयम हानि।।७।।

• शिष्य हितोपदेश •

मूलसूत्रम्—

वयसा वि एगे बुइया कुप्पंति माणवा, उण्णयमाणे य णरे महया मोहेण मुज्झइ, संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो दुरइक्कमा अजाणओ अपासओ, एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे, जयं विहारी चित्तणिवाई पंथणिज्झाइ पलिबाहिरे, पासिय पाणे गच्छिज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

नहीं धर्म में निपुण जो, और क्रिया में भूल।
कहने पर भी नहिं करे, हितकर वचन कबूल।।१।।

सद्गुरु वाणी सुन अरे, करता क्रोध कमाल।
अंटसंट दे गालियाँ, चलता उल्टी चाल।।२।।

मोहित होता सौख्य से, बार-बार ललचाय।
नहिं सह पाये कष्ट तब, रोवे अरु बिलखाय।।३।।

क्रोधी गर्वित श्रमण जो, कर लेता गणत्याग।
इधर-उधर वह भटकता, कारण अल्प विराग।।४।।

पग-पग पर बाधा रहे, जिससे वह घबराय।
संयम गिरि से गिर पड़े, मानव जन्म गँवाय।।५।।

साधक को शिक्षा सुखद, फरमाते तीर्थेश।
सदैव गुरु की नजर में, रहना आप विशेष।।६।।

परम भाव वैराग्य से, श्रमण क्रिया अनुरक्त।
सद्गुरु की हो मुख्यता, रखे याद यह सूक्त।।७।।

अर्पण सद्गुरु चरण में, अपनी इच्छा गोय।
गुरु आज्ञा धारण करे, पाप कहाँ से होय।।८।।

सदा निकट गुरु चरण में, ले लेना विश्राम।
धर्म-रति हो '**सुशील**' मुनि, पाये अविचल धाम।।९।।

ईर्या समिति प्रथम ही, करना तू अवलोक।
यतना से करना गमन, लगे पाप पर रोक।।१०।।

सद्गुरु की आराधना, करना बारम्बार।
मुनि '**सुशील**' निश्चय यही, हो जाये भव पार।।११।।

• भावना शक्ति •

मूलसूत्रम्—

एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसंफासमणुचिण्णा एगइया पाणा उद्दायंति, इहलोगवेयणवेज्जावडियं, जं आउट्टीकयं कम्मं तं परिण्णाय विवेगमेइ।

पद्यमय भावानुवाद—

गुरुवर आज्ञा धारण, करता सम्यक् सन्त।
शयनादिक क्रिया सकल, यतनायुक्त समस्त।।१।।

फिर भी हिंसा हो अगर, अल्प कर्म का बन्ध।
इह भव में परिणाम हो, कहते त्रिशलानंद।।२।।

जानबूझ हिंसा करे, अरे मनुज जो कोय।
प्रायश्चित्त कर लीजिए, विशुद्धि गहरी होय।।३।।

• मोक्ष सिद्धि •

मूलसूत्रम्—

से पभूयदंसी पभूयपरिण्णाणे उवसंते समिए सहिए सया जए, दट्ठुं, विप्पडिवेएइ अप्पाणं किमेस जणो करिस्सइ ? एस से परमारामे जाओ लोगम्मि इत्थीओ, मुणिणा हु एयं पवेइयं, उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं अवि णिब्बलासए अवि ओमोयरियं कुज्जा अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा अवि गामाणुगामं दुइज्जिज्जा अवि आहारं वोच्छिदेज्जा अवि चए इत्थीसु मणं, पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा, इच्चेए कलहासंगकरा भवंति, पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि, से णो काहिए, णो पासणिए, णो संपसारए, णो ममाए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्पसंवुडे परिवज्जए सया पावं, एयं मोणं समणुवा सिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

साधक देख प्रत्यक्ष तू, कर्मों का परिणाम।
यथार्थ रूप संसार का, पहचानो अविराम।।१।।

मंडित पंडित ज्ञानमय, रक्षक मुनि छह काय।
पाँच समिति से युक्त जो, तू उपशान्त कहाय।।२।।

उक्त श्रमण सत्वर अहो! करे कर्म का अन्त।
मोक्षसिद्धि वह सहज में, हाथोंहाथ तुरन्त।।३।।

• काम-विजय •

कलत्र का उपसर्ग हो, चलित नहीं हो सन्त।
संयम में दृढ़ता करे, आतमध्यान रमन्त।।४।।

अरे! श्रमण की इन्द्रियाँ, पीड़ा निज पहुँचाय।
अल्प अशन अरु रूक्ष कर, मन मतंग समझाय।।५।।

सब कुछ करने पर अरे, फिर भी पीड़ा पाय।
शीत ताप आतापना, ग्रहण करे मुनिराय।।६।।

इतना करने पर अरे, इन्द्रियाँ खूब सतायँ।
विहार करे अन्यत्र ही, जहाँ न परिचय पाय।।७।।

इतना करने पर अरे, इन्द्रियाँ नहीं हनन्त।
अशन ग्रहण का त्याग कर, रहे सदा एकऽन्त।।८।।

रे! रे! साधक समझ तू, होता देह-विनाश।
फिर भी सेवन विषय का, तनिक करे मत आश।।९।।

नारि-संग इच्छा करे, पाये नाना कष्ट।
भव आगामी नरक हो, होता भव-भव भ्रष्ट।।१०।।

लम्पट जो मानव यहाँ, पग-पग ले धिक्कार।
वक्त और बेवक्त वह, खाता सबकी मार।।११।।

लम्पट मानव के अरे, लेते कर-सिर काट।
नाना दुख इहलोक में, रहा कष्ट अति चाट।।१२।।

करे न नारी संग जो, ज्ञानवान गुणवान।
रसिक कथा भी नहिं सुने, मानो बहरे कान।।१३।।

तिय सेवा की भावना, स्वप्न काल नहिं रंच।
रक्षा करते आत्म की, संयम हो सौ टंच।।१४।।

पाँचवाँ उद्देशक

• लघुकर्मा माहात्म्य •

मूलसूत्रम्—

वितिगिच्छासमावण्णेणं अप्पाणेणं णो लहइ समाहिं, सिया वेगे अणुगच्छंति असिया वेगे अणुगच्छंति, अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कहं ण णिव्विज्जे ?

पद्यमय भावानुवाद—

संशययुक्त जो आत्मा, और समाधिविहीन।
मुनि 'सुशील' श्रद्धा अडिग, कर लो ठोस यकीन।।१।।

हलुकर्मी गृहवास में, सहज सम्यक्त्व पाय।
सूरि '**सुशील**' सरल चित्त, तपः त्याग अपनाय।।२।।

कितने ऐसे लोग जो, कर लेते घर त्याग।
प्राप्त करे सम्यक्त्व को, जिनका अडिग विराग।।३।।

अनुसरण आचार्य का, करते भली प्रकार।
उनका जीवन सफल है, कहते आगमकार।।४।।

करे सूरि अवहेलना, बनकर के स्वच्छन्द।
उनका जीवन विफल है, पाते भव-भव द्वन्द्व।।५।।

शिष्य दशा यह देखकर, समझायें गुरुराज।
निष्कारण करुणा करें, जिससे बनता काज।।६।।

• श्री जिनालय श्रद्धा •

मूलसूत्रम्—

तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

पद्यमय भावानुवाद—

जो-जो जिनवर ने कहा, वही सत्य निश्शंक।
निष्ठा अरु विश्वास में, लाखो लाख नव रंग।।१।।

षट् द्रव्यों के कथन में, नरक-स्वर्ग संसार।
फरमाया जिनवर यही, सत्य तथ्य स्वीकार।।२।।

षट्कायिक वर्णन किया, सदा सत्य हैं तत्त्व।
यह श्रद्धा मजबूत तब, नर-भव यही महत्त्व।।३।।

जिन मन्दिर जो स्वर्ग में, फरमाया भगवन्त।
यह श्रद्धा मजबूत जब, उनका हो भव अन्त।।४।।

• श्रद्धा और अश्रद्धा विचार •

मूलसूत्रम्—

सड्ढिस्स णं समणुण्णस्स संपव्वयमाणस्स,
समियंति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ,
समियंति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ,
असमयति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ,
असमियंति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ, समियंति मण्ण माणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ उवेहाए, असमियंति मण्णमाणस्स समिया वा असमिया वा असमिया होइ उवेहाए, उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया उवेहाहि समिहाए, इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ, से उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह, इत्थवि बालभावे अप्पाणं णो उवदंसिज्जा।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो! अहो! जिनवर वचन, सत्य तथ्य सुविचार।
अति निष्ठा जिनधर्म पर, संयम ले स्वीकार।।१।।

पहले श्रद्धा जो रही, रहे अन्त तक एक।
धन्य पुरुष संसार में, जिसका विमल विवेक।।२।।

पहले श्रद्धा शुद्ध हो, हो संयम में प्रीति।
तब हो दीक्षा बाद में, यह साधन की रीति।।३।।

अशुद्ध श्रद्धा हो प्रथम, ले संयम सहकार।
लेकिन दीक्षा बाद में, शुचि श्रद्धा संचार।।४।।

पहले श्रद्धा थी नहीं, ले संयम स्वीकार।
अगले भव तक होयगा, अश्रद्धा सुविस्तार।५।।

मानव चार प्रकार के, बतलाते भगवान।
इन चारों में कौन तुम, करो मनन मतिमान।।६।।

सम्यक् श्रद्धा मनुज की, शंका नहिं तिलमात।
असम्यक् भी सम्यक् हो, भाव तुल्य फल पात।।७।।

अगर असम्यक् भावना, रखता जो इन्सान।
सम्यक् भी असम्यक् हो, भाव तुल्य फल जान।।८।।

करो-करो उद्यम करो, संयम में दिन-रात।
साधक पाये श्रेष्ठ गति, फरमाते जिननाथ।।९।।

संयम-भाव शिथिलता, भाव-शक्ति कमजोर।
नीच गति में जीवात्मा, पाये कष्ट कठोर।।१०।।

रे! साधक तू अल्प भी, शिथिल भाव परिहार।
क्षणभर कर न प्रमाद तू, श्री जिनवर उद्‌गार।।११।।

● अहिंसा की व्यापकता ●

मूलसूत्रम्—

तुमंसि णाम तं चेव जं, हंतव्वं ति मण्णसि, तुमसि णाम तं चेव जं अज्जावेयव्वंति मण्णसि, तुमसि णाम तं चेव जं परियावेयव्वं ति मण्णसि, एवं जं परिघेत्तव्वं ति मण्णासि, जं उद्दवेयव्वं ति मण्णासि, अंजू चेयं पडिबुद्ध जीवी, तम्हा ण हंता णवि घायए, अणुसंवे यणमप्पाणेणं जं हंतव्व णाभिपत्थए।

पद्यमय भावानुवाद—

रे! रे! हिंसक मनुज तू, हिंसा करे न अन्य।
मुनि '**सुशील**' संदेश यह, मारे तू पशु वन्य।।१।।

देना चाहे कष्ट तू, वध-पीड़ा अरु मार।
क्यों कर जाने उचित तू, नर-पशु-मूढ़-गँवार।।२।।

तुझे दुक्ख जब प्रिय नहीं, पर को क्यों प्रिय होइ।
तू भी जाने सत्य यह, पाप-बीज क्यों बोइ।।३।।

जिस काया का हनन तू, करता बारम्बार।
उस काया में अनँत ही, तेरा जन्म विचार।।४।।

जिसको चाहे मारना, अरे स्वयं हो आप।
रे! रे! हिंसक शीघ्र ही, कर ले पश्चात्ताप।।५।।

अनुकम्पा चिन्तन करो, आत्मावत् सब जीव।
मानव-जीवन सफल हो, यही जिनागम नींव।।६।।

ज्ञानी नर होता सरल, जागरूक वह धन्य।
हनन स्वयं करता नहीं, करवाये नहिं अन्य।।७।।

अरे स्वयं को भोगना, हिंसा का परिणाम।
अत: किसी को मार मत, मानव बन निष्काम।।८।।

छठा उद्देशक

• दुर्गति मार्ग •

मूलसूत्रम्—

अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे णिरुवट्ठाणा, एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं, तइदिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे।

पद्यमय भावानुवाद—

कुछ तो ऐसे मनुज हैं, चलते जिन-विपरीत।
पालन में कुछ आलसी, दोनों करें फजीत।।१।।

उद्यम करें कुमार्ग में, आलस करें सुपंथ।
बढ़ें जीवन में न ये, कहते आगम ग्रंथ।।२।।

जो-जो आज्ञा दे रहे, तीर्थंकर भगवान।
मानव कर अवहेलना, कुमार्ग पर गतिमान।।३।।

कोई जीव प्रमाद से, आज्ञा देते टाल।
लेकिन चलें कुपंथ पर, अरु होते बेहाल।।४।।

दो कारण दुर्गति कहे, श्री जिनवर अरिहन्त।
जिन आज्ञा पालन करो, हो जाये भव-अन्त।।५।।

अरे शिष्य! गुरुराज पद, करना निकट निवास।
रे आत्मोन्नति के लिए, होते सफल प्रयास।।६।।

• सिद्धान्त परीक्षा •

मूलसूत्रम्—

अभिभूय अदक्खू अणभिभूए पभू णिरालंबणयाए जे महं अबहिंमणे, पवाएणं पवायं जाणिज्जा, सह सम्मइया ए परवागरणेणं अण्णसिं वा अंतिए सुच्चा।

पद्यमय भावानुवाद—

नहिं हारे उपसर्ग से, साधक वही महान्।
जिन आज्ञा में रमण मन, पाये तत्त्व प्रधान।।१।।

निरालम्ब मुनिवर मनन, समर्थ कब परिवार।
रोक न सकते नरक से, कर ले यत्न हजार।।२।।

केवल जिनवर कथन युत, जीवन ले अपनाय।
रुक सकता है नरक से, ये ही सफल उपाय।।३।।

अन्य तीर्थियों की अरे, महिमा से नहिं फूल।
जानो परखो अन्य को, पकड़ सिद्धि का मूल।।४।।

पर-तीर्थियों के बाद, अरु जिनवर भगवान।
दोनों के सिद्धान्त को, देखो करो मिलान।।५।।

आगम या गुरुदेव से, सुनकर या स्वाध्याय।
जाने वस्तु स्वरूप को, साधक कुशल कहाय।।६।।

• दृढ़ श्रद्धा •

मूलसूत्रम्—

णिद्देसं णाइवट्टेज्जा मेहावी सुपडिलेहिय सव्वओ सव्वयाए सम्ममेव समभिजाणिया इह आरामं परिण्णाय अल्लीणगुत्तो परिव्वए णिट्ठियट्ठी वीरे आगमेणं सया परक्कमेज्जासि त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद–

करे न मेधावी पुरुष, अतिक्रमण आदेश।
चिन्तन-मनन विचारकर, जाने सत्य जिनेश।।१।।

तुलना और विवेक से, कर जैनेतर ज्ञान।
असत् त्याग सत् ग्रहण कर, सत् जिनवर फरमान।।२।।

संयम को स्वीकार कर, आत्मरमण में लीन।
कर्म विदारण कीजिए, कि वीर पुरुष प्रवीन।।३।।

पराक्रम करते रहो, आगम के अनुसार।
मन-इन्द्रिय को वश करो, पाओ शिवगति द्वार।।४।।

• आस्रव मार्ग •

मूलसूत्रम्–

उड्ढं सोया अहे सोया, तिरियं सोया वियाहिया।
ए ए सोया वियक्खाया, जेहिं संगंति पासहा।।

पद्यमय भावानुवाद–

अधो ऊर्ध्व तिरछी दिशा, कर्मास्रव के द्वार।
पापबन्ध होता अरे, कर ले तनिक विचार।।

• मोक्ष मार्ग •

मूलसूत्रम्–

आवट्टं तु पेहाए इत्थ विरमिज्ज वेयवी। विणइत्तु सोयं णिक्खम्म एसमहं अकम्मा जाणइ पासइ पडिलेहाए णावकंखइ इह आगइं गइं परिण्णाय।

पद्यमय भावानुवाद–

आतम ज्ञानी पुरुष ही, रोके स्रोत कषाय।
चिन्तन-मनन विचार कर, आस्रव मुक्त कहाय।।१।।

करे निष्क्रमण स्रोत का, कभी न व्यापे शोक।
होइ अकर्मा श्रमण वह, जाने देखे लोक।।२।।

कारण विषयासक्ति है, जन्म-मरण का योग।
ज्ञानी विषय न चाहता, त्यागे सब ही भोग।।३।।

कर्मों से जो रहित हो, पाता अविचल धाम।
मुनि 'सुशील' जिनवर वचन, बतलाता निष्काम।।४।।

• आत्मदशा •

मूलसूत्रम्—

अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमग्गं विक्खायरए, सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का तत्थण विज्जइ, मई तत्थ ण गाहिया, ओए, अप्पइट्ठाणस्स खेयण्णे, से ण दीहे ण हस्से ण वट्टे ण तंसे ण चउरंसे ण परिमंडले, ण किण्हे ण नीले ण लोहिए ण हालिद्दे ण सुक्किल्ले, ण सुरभि गंधे ण दुरभि गंधे, ण तित्ते ण कडुए ण कसाए ण अंबिले ण महुरे ण लवणे, ण कक्खडे ण मउए ण गुरुए ण लहुए ण उण्हे ण एहे ण णिद्धे ण लुक्खे ण काउ ण रूहे ण संगे, ण इत्थी ण पुरिसे ण अण्णहा, परिण्णे सण्णे, उवमा ण विज्जइ, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं णत्थि।

पद्यमय भावानुवाद—

जन्म-मरण के मार्ग से, हो जायेगा पार।
कारण केवल कर्म का, कर ले बंटाढार।।१।।

मुक्त जीव अनुभूति है, वर्णन परे अतीत।
नहीं तर्क का विषय यह, गा न सके मति गीत।।२।।

जीव अकेला मोक्ष में, नहीं गोल त्रयकोण।
नहीं रंग नीलादि भी, नहिं भाषा नहिं मौन।।३।।

षट् रस भी वहँ हैं नहीं, तथा न लेश्यावान।
नहीं लिंग का भेद है, नहीं नियम उपमान।।४।।

सत्ता रूपविहीन पद, नहीं विषय का गान।
सर्व चराचर वस्तु को, देख रहे भगवान।।५।।

छठा अध्ययन : धुत

पहला उद्देशक

• संसार दशा •

मूलसूत्रम्–

ओबुज्झमाणे इह माणवेसु आघाइ से णरे, जस्स इमाओ जाइओ सव्वओ सुपडिलेहियाओ भवंति, आघाइ से णाणम णेलिसं, से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं णिक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पण्णाणमंताणं इह मुत्तिमग्गं। एवं एगे महावीरा विप्परक्कमंति, पासह एगे अवसीयमाणे अणत्तपण्णे से बेमि, से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छण्णपलासे उम्मग्गं से णो लहइ। भंजगा इव सण्णिवेसं णो चयंति। एवं एगे अणेग रुवेहिं कुलेहिं जाया रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति णियाणओ।

पद्यमय भावानुवाद–

बुद्ध पुरुष दें देशना, सुखकारी उपदेश।
मुक्तिपंथ अरु धर्म में, उद्यत रहें हमेश।।१।।

तत्पर होते धर्म में, श्रावक अरु मुनि दोइ।
धर्मपंथ चलते रहें, कर्म कष्ट दें खोइ।।२।।

जो नर पड़े प्रमाद में, नहीं असर उपदेश।
मंद बुद्धि या मूढ़ मति, पग-पग पायें क्लेश।।३।।

ढके नीर कछुआ रहे, जल ऊपर शैवाल।
नहीं छिद्र शैवाल में, दिखे न गगन विशाल।।४।।

जगत् सरोवर जानिये, कछुआ जीव विमूढ़।
विषय-भोग शैवाल सम, उपमा है यह गूढ़।।५।।

जैसे तरुवर जगह से, कभी न होता दूर।
शीत ताप छेदन सदा, सहन करे भरपूर।।६।।

वैसे मोहित जीव भी, करे न घर का त्याग।
नाना दुख सहता सदा, धर-धर भव-भव स्वाँग।।७।।

नाना कष्ट उपाधियाँ, बहुविध रोग सताय।
इससे नर भव नष्ट हो, बाजी हाथ गँवाय।।८।।

देख पराया कष्ट तुम, करो न पातिक काम।
मुनि '**सुशील**' समझो अरे, पाओगे आराम।।९।।

• अविवेक फलादेश •

मूलसूत्रम्—

तं सुणेह जहा तहा संति पाणा अंधा तमसि वियाहिया, तामेव सइं अ सइं अइअच्च उच्चा वयफासे पडिसंवेएइ, बुद्धेहिं एयं पवेइयं संति पाणा वासगा रसगा उदए-उदयेचरा आगास गामिणो। पाणा पाणे किलेसंति, पासलोए महब्भयं।

पद्यमय भावानुवाद—

सुनो! सुनो इस कर्म का, फलादेश फरमान।
चतुर्थ गति संसार में, नाना कष्ट विधान।।१।।

कोई अन्धा जन्म से, रहा कष्ट अति भोग।
को है तेरी मदद में, स्वयं कमाये योग।।२।।

भावनयन से अन्ध जो, गिरे नरक तमकार।
कौन बचाये सोच तू, चाहे क्यों परिवार।।३।।

पुनि-पुनि दुख बहु योनि में, पाता जन्म अनेक।
फिर भी समझ न पा रहा, जिसका अति अविवेक।।४।।

जीव-जीव से घात हो, होते सब भयभीत।
महान् भय संसार में, कैसे सुख संगीत।।५।।

जानो यह मानव अरे, तू संयम स्वीकार।
सर्व दुखों से मुक्त हो, श्री जिनवर उद्गार।।६।।

• क्षभंगुर दशा •

मूलसूत्रम्—

बहुदुक्खा हु जंतवो, सत्ता कामेसु माणवा, अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेण अट्टे से बहुदुक्खे इइ बाले पकुव्वइ एए रोगा बहू णच्चा आउरा परियावए णालं पास, अलं तवेएहिं, एयं पास मुणी ! महब्भयं णाइवाइज्ज कंचणं।

पद्यमय भावानुवाद—

नाना जीव जहान में, पाते दुख दिन-रात।
अनुकम्पा उन पर करो, सौ की है इक बात।।१।।

मोहित विषय-विलास में, क्षणभंगुर नरदेह।
कब जाने किस समय में, हो जायेगा खेह।।२।।

अल्प सुखों के हित करे, बहु जीवों की घात।
महा मूढ़ कैसे अरे, पायेगा सुख भ्रात।।३।।

नाना होंगे रोग जब, व्याकुल हो दिन-रैन।
पापों को भोगे बिना, कब पायेगा चैन।।४।।

रोग मिटाने के लिए, हिंसा से उपचार।
करते मानव मूढ़ जो, निशदिन बारम्बार।।५।।

हिंसा से दुख उदय हो, यही सनातन रीति।
मुनि 'सुशील' जिन वचन पर, कर ले दृढ़ परतीति।।६।।

• कर्म और चिकित्सा •

समर्थ चिकित्सा है तभी, कर्म शान्त हो जाय।
क्यों करता है पाप तू, करता मूढ़ उपाय।।७।।

महान् भय कारण अरे, हिंसा का उपचार।
यही जान अघकार्य का, कर लेना परिहार।।८।।

● कर्म धुनन बोध ●

मूलसूत्रम्—

आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धूयवायं पवेय इस्सामि इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूया अभिसंजाया अभिणिव्वट्टा अभिसंवुड्ढा अभिसंबुद्धा अभिणिखंता अणुपुव्वेण महामुणी।

पद्यमय भावानुवाद—

सद्गुरु अपने शिष्य को, फरमाते उपदेश।
अरे कर्म को झटकना, धूत अर्थ सविशेष।।१।।

अपने-अपने कर्म से, नाना कुल अवतार।
शुक्र रक्त संयोग से, रहे गर्भ आधार।।२।।

कललऽरु पेशी रूप में, निर्मित अंग शरीर।
बाद जन्म धारण करे, बाल युवा वय वीर।।३।।

धर्मकथा के श्रवण से, चढ़ते भाव विरक्त।
जब दीक्षा धारण करे, पाते पद अव्यक्त।।४।।

● मोह दशा ●

मूलसूत्रम्—

तं परक्कमंतं परिदेवमाणा, मा णे चयाइ इह ते वयंति छंदोवणीया अज्झोववण्णा अक्कंदकारी जणना रूयंति, अतारिसे मुणी णय ओहंतरए जणगा जेण विप्पजढा, सरणं तत्थ णो समेइ, कहं णु णाम से तत्थ रमइ ? एयं णाणं सया समणुवासिज्जासि त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

संयम हित उद्यत हुए, त्याग सर्व संसार।
तब उससे कहते अरे, तात-मात अरु दार।।१।।

आक्रन्दन करते गजब, बरसे आँसू धार।
अरे न हमको छोड़ना, तू परिजन-आधार।।२।।

अरे लाड़ले हम चलें, तुझ आज्ञा अनुसार।
लेकिन करो न त्याग घर, इतनी-सी मनुहार।।३।।

एक मात्र इस जगत् में, तेरा ही विश्वास।
तू भी धोखा दे रहा, फिर किसकी हो आश।।४।।

जो नहिं करता त्याग घर, तात-मात-परिवार।
वह कैसे मुनिवर बने, पार न हो संसार।।५।।

उक्त कथन सुनकर अरे, उन पर धरे न ध्यान।
ज्ञानी जन गृहवास में, रहते नहीं विधान।।६।।

जो मुनि मन धारण करे, सम्यक् भाव प्रकार।
निश्चय वह संसार से, हो जायेगा पार।।७।।

दूसरा उद्देशक

• आतुर दशा •

मूलसूत्रम्—

आउरं लोगमायाए चइत्ता पुव्व संजोंग हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि वसु वा अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं जहा तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला।

पद्यमय भावानुवाद—

रे मानव इस लोक का, सम्यक् रूप विचार।
ब्रह्मचर्य धारण करे, उपशम भाव उदार।।१।।

आतुर प्राणी भोग से, अरे पूर्व संयोग।
सूरि '**सुशील**' पुण्य दशा, ध्याता तब शुभ योग।।२।।

श्रावक व्रत धारण करे, अथवा मुनिव्रत धार।
मगर मोह के उदय से, गिरे गर्त्त संसार।।३।।

पालन धर्म समर्थ जो, कहलायें कब योग्य।
हो कुशील अघकुशल हो, अशुभकर्म के भोग्य।।४।।

● पुण्य प्रभाव ●

मूलसूत्रम्—

वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायं पुंछणं विउसिज्झा, अणुपुव्वेण अणहियासेमाणा परीसहे दुरहियासए, कामे ममायमाणस्स इयाणिं मुहुत्तेण वा अपरिमाणाए भेए, एवं से अंतराएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवइण्णा चेए।

पद्यमय भावानुवाद—

मानव भव दुर्लभ महा, मिलता पुण्य प्रभाव।
मुनि '**सुशील**' साँची कहे, कर ले धर्म लगाव।।१।।

सर्व विरति धारण करे, पर दुख से घबराय।
जिससे वे गृहवास में, शीघ्रतया ही आय।।२।।

फिर से विषय विलास में, रहे नित्य ही मग्न।
कर विचार यह अल्प सुख, नश्वर काया भग्न।।३।।

तृप्त न होता भोग से, अन्तहि तू पछताय।
खल संयम से भ्रष्ट हो, नरभव व्यर्थ गँवाय।।४।।

चाहे लाखों कष्ट हों, पद-पद सुर नर वार।
फिर भी संयम त्याग मत, बस इतना स्वीकार।।५।।

● विषय पराजय बोध ●

मूलसूत्रम्—

अहेगे धम्ममायाय आयाणप्पभिइसु पणिहिए चरे, अप्पलीयमाणे दढे सव्वं गिद्धिं परिण्णाय, एस पणए महामुणी, अइयच्च सव्वओ संगं ण महं अत्थित्ति इय एगो अहं, अस्सि जयमाणे इत्थ विरए अणगारे सव्वओ मुंडे रीयंते, जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए, से आकुट्ठे वा हए वा लुंचिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सद्दफासेहिं इय संखाए एगयरे अण्णयरे अभिण्णाय तितिक्खमाणे परिव्वए जे य हिरी जे य अहिरीमाणे।

पद्यमय भावानुवाद–

करो मोक्ष की भावना, मुनिवर धर्म प्रधान।
शुचि संयम आराधना, निश्चय हो कल्याण।।१।।

विषय पराजित कर लिया, वही बहादुर वीर।
अल्प काल ही जीव तब, दे कर्मों को चीर।।२।।

भाये ऐसी भावना, नहिं मेरा संसार।
रहे अकेला अन्त में, केवल धर्माधार।।३।।

यतना युत करनी सकल, प्रतिदिन बारम्बार।
महा श्रमण वे कर्मक्षय, करते सर्व प्रकार।।४।।

द्रव्यभाव मुण्डित श्रमण, रहते कभी अचेल।
रूक्ष अशन ऊनोदरी, चढ़ते समता शैल।।५।।

गाली या अपमान हो, दंडित या आक्रोश।
निंदा झूठे वचन सुन, कभी न आये रोष।।६।।

इतना होने पर सदा, करे सहन अणगार।
पूर्व पाप परिणाम फल, भोग सतत सविचार।।७।।

तिरसठ या छत्तीस भी, परिषह जब प्रकटाय।
सहन करे समभाव से, कर्म निर्जरा पाय।।८।।

• भावलग्न बोध •

मूलसूत्रम्–

ए ऐ भो ! णगिणावुत्ता जे लोगंसि अणागमण धम्मिणो आणाए मामगं धम्मं, एस उत्तरवाए इह माणवाणं वियाहिए, इत्थोवरए तं झोसमाणे आयणिज्जं परिण्णाय परियाएण विगिंचइ, इहमेगेसिं एक चरिया होइ तत्थ इयरा इयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए सुब्भिं अदुवा दुब्भिं अदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसंति, ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासिज्जासि।

पद्यमय भावानुवाद—

आत्मगुप्त इस लोक में, ले दीक्षा पर्याय।
नहिं लौटे गृहवास में, भाग्यवन्त कहलाय।।१।।

भाव नग्न मुनिवर सदा, आकिंचन व्यवहार।
है वह जिनवर धर्म का, सच्चा पालनहार।।२।।

मुनि जीवन उत्कृष्ट है, कर्म-नाश उद्योग।
अहो! अकेले विचरकर, श्रेष्ठ साधना योग।।३।।

मेधावी मुनिवर हरे, अशन दोष तत्काल।
शुचि संयम आराधना, करे विजय यम काल।।४।।

सुगन्ध या कि दुर्गन्ध हो, निन्दा-मान समान।
सिंह शूर उपसर्ग हो, फिर भी समतावान।।५।।

तीसरा उद्देशक

• प्रज्ञाशील श्रमण •

मूलसूत्रम्—

आगयपण्णाणाणं किसा बाहा भवंति पयणुए य मंससोणिए विस्सेणिं कट्टु परिण्णाय, एस तिण्णे मुत्ते विरए पियाहिए त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो सन्त जग जानते, सम्यक् रूप निहार।
नहिं ममता है वस्तु पर, समता सभी प्रकार।।१।।

मुनिवर प्रज्ञाशील जो, होते तप तल्लीन।
तप से करते देह कृश, कभी न होते पीन।।२।।

जो-जो कारण कर्म के, करें नष्ट अत्यन्त।
जिन आज्ञा पालन करें, वे जीवन-पर्यन्त।।३।।

उक्त श्रमण संसार से, हो जायेगा पार।
मुक्त विरत ही जानिए, आगम के अनुसार।।४।।

• श्री आचार्य कृपा •

मूलसूत्रम्–

विरयं भिक्खुं रीयंतं चिरराओसिअं अरई तत्थ किं विधारए ? संधेमाणे समुट्ठिए, जहा से दीवे असंदीणे एवं से धम्मे आयारिय-पदेसिए, ते अणवकंखमाणा पाणे अणइवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया, एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिया पोए एवं ते सिस्सा दिया य राओ य आणुपुव्वेण वाइय। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद–

होइ असंयम भिन्न जो, वाहक पंथ प्रशस्त।
दीर्घकाल तक साधना, आत्मरमण में मस्त।।१।।

फिर भी कर्म प्रभाव से, संयम जीवन भंग।
मोहित होता विषय से, गिरता पाइ कुसंग।।२।।

या फिर कर-कर साधना, निर्मल भाव प्रधान।
यथाख्यात चारित्र को, पाये सन्त महान्।।३।।

ऐसे मुनिवर जगत् में, करते पर-उपकार।
भव जीवों को मोक्ष हित, परम सहायक सार।।४।।

शरणभूत माना गया, सागर द्वीप समान।
वैसे मुनिवर जगत हित, परम सहायक जान।।५।।

विरक्त प्रिय मतिमान मुनि, शोभित संघ विशेष।
पंडित मंडित सुयश अति, कहते यही जिनेश।।६।।

जो मानव जिनधर्म पर, उद्यम करे न कोय।
करते रक्षा आत्म की, सूरि सहायक होय।।७।।

जैसे खग निज बाल का, रखता निश-दिन ध्यान।
तब तक वह पालन करे, जब तक हो न उड़ान।।८।।

इसी तरह गुरु शिष्य का, रखते हरदम ध्यान।
जब तक निपुण न धर्म में, तब तक निश्रा दान।।९।।

सुनो तात आचार्य का, जो-जो हित फरमान।
कर सम्यक् आराधना, पाये मोक्ष महान्।।१०।।

चौथा उद्देशक

• निन्दा निषेध •

मूलसूत्रम्—

सीलमंता उवसंता संखाए रीयमाणा असीला अणुवयमाणस्स बिइया मंदस्स बालया।

पद्यमय भावानुवाद—

शीलवन्त उपशांत मुनि, सम्यक् संयमवान।
उनको कहे अशील जो, महामूढ़ इन्सान।।१।।

उत्तम मुनिवर संत को, मूरख बुरा बताय।
कही दूसरी मूर्खता, करता वह अन्याय।।२।।

• सम्यक्त्ववान •

मूलसूत्रम्—

णियट्टमाणा वेगे आयार-गोयरमाइक्खंति, णाणब्भट्ठा दंसणलूसिणो।

पद्यमय भावानुवाद—

अशुभ कर्म के उदय से, करता संयम नाश।
किन्तु प्ररूपणा शुद्ध हो, जिन आगम विश्वास।।१।।

श्रावक अथवा श्रमण का, प्राप्त बराबर ज्ञान।
होय भ्रष्ट संसार से, फिर भी समकितवान।।२।।

होइ ज्ञान से भ्रष्ट जो, पोषक शिथिलाचार।
करते दर्शननाश वे, कहते आगमकार।।३।।

पाँचवाँ उद्देशक

• पण्डित मरण •

मूलसूत्रम्—

कायस्स वियाघाए एस संगामसीसे वियाहिए से हु पारंगमे मुणी, अविहम्ममाणे फलगावयट्ठी कालोवणीए कंखिज्ज कालं जाव सरीरभेउ।

पद्यमय भावानुवाद—

युद्ध भूमि के मध्य में, लाखों सैन्य विलोक।
शूरवीर तन मोह में, करने लगता शोक।।१।।

मगर वीर दृढ़ भाव से, भरता है हुंकार।
लाखों सेना गीध सम, करे पलायन द्वार।।२।।

फिर भी कुछ मुनि मृत्यु भय, कायर हो घबराय।
आर्त्तध्यान करने लगें, कायघात दुखदाय।।३।।

धैर्यवान यदि श्रमण हो, करता मन मजबूत।
डरता कब वह काल से, सच्चा वीर सपूत।।४।।

करे प्रतीक्षा मृत्यु की, रखकर समता भाव।
जड़-चेतन की समझ से, लगे किनारे नाव।।५।।

स्थिर रहता काष्ठ सम, देह भेद हो जाय।
करे प्राप्त पंडित-मरण, उत्तम गति वह पाय।।६।।

सातवाँ अध्ययन : महापरिज्ञा

पहले से सात उद्देशक

श्रीमद् नन्दीसूत्र की श्रीमलयगिरि टीका और निर्युक्ति के अनुसार यह अध्ययन सदा के लिए विच्छिन्न है, अर्थात् आजकल उपलब्ध नहीं है।

• छन्द दोहा •

महापरिज्ञा सातवाँ, अध्ययन अब विच्छिन्न।
जिससे पाठक वृन्द का, होता है मन खिन्न।।१।।

बहु विद्या से युक्त था, मन्त्र यन्त्र भण्डार।
दुरुपयोग होने लगा, इससे लुप्त विचार।।२।।

आठवाँ अध्ययन : विमोक्ष

पहला उद्देशक

• अन्ध श्रद्धा •

मूलसूत्रम्—

मामगं धम्मं पण्णवेमाणा।

पद्यमय भावानुवाद—

अपने-अपने धर्म को, श्रेष्ठ बताते लोग।
मण्डन अपने पक्ष का, नहीं सत्य आलोक।।

• पाप वर्जित •

मूलसूत्रम्—

सवत्थसम्मयं पावं।

पद्यमय भावानुवाद–

सर्वसम्मत हिंसा जहाँ, अन्य धर्म अनुसार।
मौन साध रत धर्म में, ये ही मुनि आचार।।

• धर्म वृद्धि •

मूलसूत्रम्–

णेव गामे णेव रण्णे धम्ममायाणह।

पद्यमय भावानुवाद–

नहीं धर्म है विपिन में, नहीं धर्म है ग्राम।
धर्म प्रकट है आत्म में, श्री जिन वचन ललाम।।

दूसरा उद्देशक

• अकल्पनीय परित्याग •

मूलसूत्रम्–

से भिक्खू परिक्कमिज्ज वा जाव हुरत्था वा कहिंचि विहरमाणां तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा 4 वत्थं वा 4 जाव आहट्टु चेएइ आवसहं वा समुस्सिणाई भिक्खू परिघासेउं, तं च भिक्खू जाणिज्जा सहसम्मइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा सुच्चा–अयं खलु गाहावई मम अट्ठाए असणं वा 4 वत्थं वा 4 जाव आवसहं वा समुस्सिणाइ, तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद–

चाहे मरघट में रहो, चाहे विपिन विहार।
चाहे पुर अरु ग्राम में, समतामय अणगार।।१।।

भक्तिभाव के वश हुआ, आये मुनि के पास।
भोजन चार प्रकार का, अरज बनाया खास।।२।।

प्राणादिक आरंभ कर, वस्त्र किया तैयार।
लाया अपने सदन से, ग्रहण करे अणगार।।३।।

मुनिवर अपनी बुद्धि से, अथवा सुनकर जान।
निश्चय यह मेरे लिए, भोजन वसन मकान।।४।।

समारंभ का दोष यह, साधक तू यह जान।
अतः गृही से मुनि कहे, कल्प न श्रद्धावान।।५।।

तीसरा उद्देशक

• बोध-प्रबोध •

मूलसूत्रम्—

मज्झिमेणं वयसावि एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिया।

पद्यमय भावानुवाद—

कोई मध्यम आयु में, ग्रहण करें मुनि धर्म।
धर्मकरण उद्यत बने, काटें अपने कर्म।।

• धर्मरहस्य •

मूलसूत्रम्—

समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।

पद्यमय भावानुवाद—

अहो धर्म समभाव है, फरमाते श्रमणेश।
निश्चय कर दृढ़ता करो, मिटते कर्म कलेश।।

• परिषह विजेता •

मूलसूत्रम्—

आहारोवचया देहा परीहसहपभंगुरा पासह एगे सव्विंदिएहिं परिगिलायमाणेहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

अशन-पान से देह की, बल-वृद्धि हो जाय।
यों ही साधक ज्ञान से, श्रद्धा-भक्ति बढ़ाय।।१।।

हो आहार अभाव तो, बनता देह ग्लान।
फिर भी श्रद्धा-भक्ति में, चढ़े भाव सोपान।।२।।

वीर धीर ज्ञानी श्रमण, कर कायरता दूर।
श्रमण धर्म के समर में, करे कर्म को चूर।।३।।

कितने कायर श्रमण तो, परिषह से घबराय।
होते शिथिल सुधर्म में, शासन संघ लजाय।।४।।

चौथा उद्देशक

• तपाराधना •

मूलसूत्रम्—

लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमण्णा गए भवइ।

पद्यमय भावानुवाद—

अल्प वस्त्र धारण करे, अल्प अचेलक होइ।
परित्यागी मुनि वस्त्र का, सहज करे तप सोइ।।१।।

परिषह सहने में बने, सक्षम जो मुनिराज।
आगम में जिनवर कहा, सुगम तपस्या-साज।।२।।

• आज्ञाराधना •

मूलसूत्रम्—

जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिज्जा।।२११।।

पद्यमय भावानुवाद—

तीर्थंकर भगवन्त का, जो-जो है फरमान।
उसी रूप आचरण कर, साधक तू मतिमान।।१।।

चाहे हो निर्वस्त्र मुनि, या कि वस्त्र हो पास।
रहे सन्त समभाव में, करे कर्म का नाश।।२।।

• मर जाना मंजूर •

• दोष सेवन निषेध •

मूलसूत्रम्—

जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ पुट्ठो खलु अहमंसि णालमहमंसि सीयफासं अहिया सित्तहे से वसुमं सव्व-समण्णागय-पंणाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे। तवस्सिणो हु तं सेयं जमेगे विहमाइए। तत्थावि तस्स कालपरियाए। से वि तत्थ विअंतिकारए। इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेसं आणुगामियं। त्ति बेमि।

पद्यमय भावानुवाद—

ऐसा होइ प्रतीत जब, परिषह सहे न जायँ।
जागृत करे विवेक को, कबहू नहिं घबराय।।१।।

सहन करे उपसर्ग मुनि, रक्खे समता धीर।
विचलित नहिं उपसर्ग से, कहते हैं प्रभु वीर।।२।।

पाये मुनिवर कष्ट यदि, उदय हुआ तन र
अथवा पीड़ित काम से, इन्द्रियँ चाहें भोग।।३।।

नारी आये सामने, करना चाहे नष्ट।
मुनिवर भी असमर्थ हों, आशंका हो भ्रष्ट।।४।।

ऐसे क्षण में मुनि करे, मरण वरण हितवन्त।
मगर नहीं चारित्र में, दोष लगाये सन्त।।५।।

यह भी मरण कि काल का, कहलाये पर्याय।
धीर-वीर साधक श्रमण, देता कर्म मिटाय।।६।।

मर जाना मंजूर हो, नहीं लगाना दोष।
मुनि '**सुशील**' करता यही, अन्तरंग उद्घोष।।७।।

मरण-श्रेय लेकर मरे, जीवन कर बेदाग।
यही श्रेयस्कर भावना, प्राप्त मोक्ष सौभाग।।८।।

छठा उद्देशक

• स्वयं कर्म निर्माता •

मूलसूत्रम्—

जस्सणं भिक्खुस्स एवं भवइ एगे अहमंसि, ण मे अत्थि कोइ, ण याहमवि कस्सवि, एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा, लाघवियं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवइ जाव समभिजाणिया।

पद्यमय भावानुवाद—

जिन-जिन श्री मुनिराज का, ऐसा अध्यवसाय।
मैं अकेला अन्त में, मेरापन कुछ नाय।।१।।
मैं किसी का हूँ नहीं, नहिं मेरा संसार।
सूरि 'सुशील सुभावना, कर अनुभव साकार।।२।।
अपने-अपने कर्म से, भोग रहे सब कष्ट।
कहाँ दोष है अन्य का, ज्ञानी भाव स्पष्ट।।३।।
लघु बनाये स्वयं को, हो न मोह का भार।
सुखद रूप तप प्राप्त हो, पाये समता सार।।४।।

• स्वाद विजय •

मूलसूत्रम्—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ वा हणुयाओ वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसाएमाणे, से अणासायमाणे लाघवियं आगममाणे।

पद्यमय भावानुवाद—

श्रमणी अथवा हो श्रमण, करते विमल विचार।
लेते भाव विवेक से, भोजन चार प्रकार।।१।।

रसना-रस के कारणे, करे न वह आहार।
केवल रक्षा देह की, करे अशन अणगार।।२।।

दायें से बायें अरे, ग्रास न हो संचार।
एक ओर से चाब कर, देते गले उतार।।३।।

एक गाल से दूसरे, गाल न हो संचार।
उदासीन हो स्वाद से, लेते गले उतार।।४।।

कर्मों को हलका करें, स्वादविजेता सन्त।
सहज रूप तप प्राप्त हो, फरमाते भगवन्त।।५।।

सम्यक् रूप विचार तू, साधक सर्व प्रकार।
समता का सेवन करे, होने हित भव पार।।६।।

• मरणविधि •

मूलसूत्रम्—

जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ से 'गिलामि च' खलु अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेज्जा, आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेत्ता, कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिणिव्वुडच्चे।

पद्यमय भावानुवाद—

साधक मन संकल्प यह, नश्वर देह ग्लान।
सहज क्रिया असमर्थ है, नहीं काय सुखमान।।१।।

जो मुनिवर क्रमशः करें, नित्य अशन का त्याग।
पतला करें कषाय अघ, बलयुत करें विराग।।२।।

मुनिवर नियमित से करें, काया का व्यवहार।
तन कषाय हो फलक सम, दोनों क्षीण निहार।।३।।

साधक मरण समाधि हित, समता ले अपनाय।
देह दुक्ख संताप हित, सदा रहित हो जाय।।४।।

इंगितमरण शरीर का, करते मुनिवर त्याग।
मुनि 'सुशील' वे मुक्तिपद, पा लेते सौभाग।।५।।

आठवाँ उद्देशक

• समत्व बोध •

मूलसूत्रम्—

जीवियं णाभिकंखेज्जा, मरणं णो वि पत्थए।
दुहवो ओडवि ण सज्जिज्जा, जीविए मरणे तहा।।

पद्यमय भावानुवाद—

जीवन की इच्छा नहीं, नहीं मृत्यु का भाव।
दोनों में आसक्ति बिन, रखते मुनि समभाव।।

• पाप निरोध •

मूलसूत्रम्—

जओ वज्जं समुप्पज्जे, ण तत्थ अवलंबए।
तओ उक्कसे अप्पाणं, फासे तत्थऽहियासए।।

पद्यमय भावानुवाद—

वर्ज्य क्रिया या कार्य में, अगर पाप हो जाय।
वह धन्धा मत कीजिए, जैनागम फरमाय।।

अरे! अरे! जिस कार्य से, हो अघ वज्र समान।
कभी नहीं वह कीजिए, तुम साधक गुणवान।।

• धर्म प्रभावक •

मूलसूत्रम्—

बुद्धा धम्मस्स पारगा।

पद्यमय भावानुवाद—

बुद्धिमान जिनधर्म में, बनता कुशल कमाल।
करता धर्म प्रभावना, अहो! संघ का लाल।।

• कषाय निरोध •

मूलसूत्रम्—

कसाए पयणुए किच्चा।

पद्यमय भावानुवाद—

सर्वप्रथम कर लीजिए, पतली आप कषाय।
जैनागम का सार यह, अल्प शब्द समझाय।।

• समता ग्रहण बोध •

मूलसूत्रम्—

अप्पाहारे तितिक्खए।

पद्यमय भावानुवाद—

अल्प अशन जब प्राप्त हो, कर ले मन संतोष।
सहन करो समभाव से, मिटे पाप मल दोष।।१।।

• अभय मार्ग •

मरने की इच्छा नहीं, नरभव सफल बनाय।
शुभ संयम आराधना, यही भावना लाय।।२।।

नहिं जीवन पर राग है, नहीं मृत्यु पर द्वेष।
उदासीन हो देह से, समता भाव विशेष।।३।।

• समाधि रहस्य •

मूलसूत्रम्—

मज्झत्थो णिज्जरापेही, समाहिमणु पालए।
अंतो बहिं विउसिज्ज, अज्झत्थं सुद्ध मेसए।।

पद्यमय भावानुवाद—

अन्त समय मध्यस्थ हो, दुख-सुख में समभाव।
अनुपालन करे समाधि, पार लगेगी नाव।।१।।

रखे निर्जरा भाव मन, राग-द्वेष से हीन।
उपलब्धि परम समाधि, जब हो अन्तर्लीन।।२।।

भीतर-बाहर पाप जो, कर ले साधक दूर।
सूरि '**सुशील**' कर्म अरे, होंगे चकनाचूर।।३।।

अन्तःकरण शुद्धी करण, करे भावना एक।
भिन्न रहे संसार से, जागृत करे विवेक।।४।।

• आज्ञा-पालन •

मुनि अपनी मर्याद का, रखिए पूरा ध्यान।
उल्लंघन मत कीजिए, पालो प्राण समान।।५।।

जो-जो भी उपसर्ग हों, सहन करो समभाव।
यह आज्ञा जिनराज की, कर लेना बरताव।।६।।

• आत्म प्रबोध •

मूलसूत्रम्—

पाणा देहं विहिंसंति।

पद्यमय भावानुवाद—

हिंसक प्राणी यदि तुम्हें, देता घातक कष्ट।
सोचो करे विघात तन, आत्मा करे न नष्ट।।

• अपूर्व सुख रहस्य •

मूलसूत्रम्—

आसवेहिं विवित्तेहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

आस्रव पापाचार से, अलग हुए जो सन्त।
आत्मिक सुख से तृप्त हैं, सह दुख समतावन्त।।

● बन्धन खण्डन ●

मूलसूत्रम्—

गंथेहिं विवित्तेहिं।

पद्यमय भावानुवाद—

निश्चित ही जो मुक्त है, बन्धन दोउ प्रकार।
मुनि '**सुशील**' संसार से, हो जायेगा पार।।

● आर्य-कार्य ●

मूलसूत्रम्—

पग्गहियतरंगं चेयं, दवियस्स वियाणओ।

पद्यमय भावानुवाद—

महाव्रती गीतार्थ मुनि, करते उत्तम काम।
इंगितमरण सुग्रहण कर, पाते अविचल धाम।।

● विषय-ग्लानि ●

मूलसूत्रम्—

इंदिएहिं गिलायंते, समियं आहरे मुणी।

पद्यमय भावानुवाद—

होती ग्लानि श्रमण को, इन्द्रिय विषय विलास।
साम्यभाव मन में धरे, करता आत्म-विकास।।

● यत्नाधर्म ●

मूलसूत्रम्—

संकुचए पसारए।

पद्यमय भावानुवाद—

परमार्जन पहले करो, रजोहरण कर धार।
लेना अंग सिकोड तू, अथवा अंग पसार।।

• कषाय विजय विधि •

मूलसूत्रम्—

इंदियाणि समीरए।

पद्यमय भावानुवाद—

सावधान साधक रहे, इन्द्रिय विषय कषाय।
हटा लीजिए चित्त को, ये ही सरल उपाय।।

• जिनमार्ग •

मूलसूत्रम्—

अयं से उत्तमे धम्मे।

पद्यमय भावानुवाद—

अनशन उत्तम धर्म है, कहते हैं जिनराज।
पादपोपगमन श्रेष्ठ अति, मृत्यु-वरण सुख-साज।।

• देहत्याग विधि •

मूलसूत्रम्—

अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पगं।
वोसिरे सव्वसो कायं, ण मे देहे परीसहा।।

पद्यमय भावानुवाद—

अगर उदय उपसर्ग हो, मरण तुल्य भयवान।
तब तू देह बिसार दे, बनकर समतावान।।१।।

यह भी चिन्तन सतत हो, मेरा नहीं शरीर।
फिर कैसे उपसर्ग हो, चाहे लाखों पीर।।२।।

• आत्मार्थी •

मूलसूत्रम्—

जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा य संखाय।

पद्यमय भावानुवाद—

जब तक यह जीवन रहे, तब तक संकट होय।
देह भेद का ज्ञान कर, मेरापन ले खोय।।

• क्षणभंगुर भोग •

मूलसूत्रम्—

भेउरेसु ण रज्जिज्जा, कामेसु बहुयरे सु वि।

पद्यमय भावानुवाद—

कामभोग संसार के, निश्चय नश्वर पात।
चाहे पाये बहुत से, मूर्च्छित हो मत भ्रात।।

• देव-आग्रह •

मूलसूत्रम्—

सासएहिं णिमंतिज्जा, दिव्वमायं ण सद्दहे।
तं पडिबुज्ज माहणे, सव्वं णूमं विहूणिया।।

पद्यमय भावानुवाद—

यावज्जीवन काम सुख, देने हित मनुहार।
अथवा कोई देवता, लाये ऋद्धि अपार।।१।।

साधक माया समझकर, करना मत विश्वास।
माया परिहर सर्व ही, रहो आत्म-आवास।।२।।

• तितिक्षा धर्म •

मूलसूत्रम्—

तितिक्खं परमं णच्चा।

पद्यमय भावानुवाद—

आये जब प्रतिकूलता, कर लो समतापान।
परम धर्म है तितिक्षा, कर निश्चय पहचान।।

नवाँ अध्ययन : उपधान श्रुत

• परिचय : पूर्वपाठ •

अन्तिम है संवाद यह, कहा गया 'उपधान'।
श्रोता 'जम्बू स्वामि' से, कहा जु 'सुधर्म' महान।।१।।

शिरोधान/तकिया रहे, सिर-नीचे 'उपधान'।
साधन के अवलंब को, उसी तरह लो जान।।२।।

इस अध्ययन के पाठ हैं, या उद्देशक चार।
क्रमशः जानो तात अब, तुम चारों का सार।।३।।

पहले उद्देशक लखो, प्रभु-चर्या के रूप।
कहे **दूसरे** पाठ में, सेवित थान अनूप।।४।।

और **तीसरे** सर्ग में, पीड़ा के कुछ मर्म।
मनहु अग्नि-पथ दौड़ना, महावीर का धर्म।।५।।

अन्तिम **चौथा** पाठ है, व्याधि-चिकित्सा-सर्ग।
पग-पग पाये वीर प्रभु, भाँति-भाँति उपसर्ग।।६।।

पहला उद्देशक

• दीक्षा और विहार •

मूलसूत्रम्—

अहासुयं वदिस्सामि जहा से समणे भगवं उट्ठाय।
संखाये तंसि हेमंते अहुणा पव्वइए रीयत्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

सुन जम्बू कहता तुम्हें, बोले स्वामि सुधर्म।
दीक्षा तथा विहार-प्रभु, अरु चर्या का कर्म।।१।।

नेह-गेह अरु कुण्डपुर, त्याग चले संसार।
हिमऋतु दीक्षा वरण कर, आगे किया विहार।।२।।

मूलसूत्रम्—

णो चेविमेण वत्थेण पिहिस्सामि तंसि हेमंते।
से पारए आवकहाए एयं खु अणुधम्मियं तस्स।।

पद्यमय भावानुवाद—

कंधे पर शाटक पड़ा, ली जब दीक्षा वीर।
अनासक्त निर्लिप्त प्रभु, वीर-धीर-गम्भीर।।१।।

शीतकाल हेमंत ऋतु, करूँ न पट उपयोग।
ऐसा प्रण प्रभु ने किया, त्यागे लघुतम भोग।।२।।

जीवनभर का प्रण अटल, सहनशक्ति अनमोल।
अनुधर्मिता वीर की, कष्टों रहे अडोल।।३।।

• श्री महावीर प्रभु-उपसर्ग •

मूलसूत्रम्—

चत्तारि साहिए मासे बहवे पाणजाइया आगम्म।
अभिरुज्झ कायं विहरिंसु आरुसियाणं तत्थ हिंसिंसु।।

पद्यमय भावानुवाद—

संयम-धारण के समय, दिव्यगंध तन वीर।
देह गंध लिपटें भ्रमर, देते तन को पीर।।१।।

• छन्द कुंडलिया •

महावीर भगवान जब, किय संयम स्वीकार।
भ्रमरादिक उपसर्ग तब, हुए मास तक चार।।
हुए मास तक चार, देह अलि इत-उत चढ़ते।
करें अचानक दंश, महामुनि समता सहते।।
दौड़े असि की धार, भ्रमर दंश जिनेश सहा।
ज्ञात पुत्र भगवान हैं, जगत् में वीर महा।।२।।

• विहार-विधि •

मूलसूत्रम्—

चक्खुमासज्ज अंतसो झाई।

पद्यमय भावानुवाद—

जिनवर तिरछी भीत पर, देते नेत्र टिकाय।
देखें अंतर आतमा, ध्यान किया मन लाय।।

• गृहस्थ-परिचय निषेध •

मूलसूत्रम्—

**जे के इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से झाई।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु, गच्छइ णाइवत्तइ अंजू।।**

• छन्द कुंडलिया •

करे न परिचय गृहस्थ से, लीन सदा शुभ ध्यान।
संभाषण करते नहीं, वर्द्धमान भगवान।।१।।
वर्द्धमान भगवान, निजी कार्य हित जाते।
पृच्छा पर भी मौन, नहीं करते थे बातें।।२।।
अतिक्रमण से रहित, जिन मोक्षमार्ग प्रस्थान।
करें न परिचय गृहस्थ, वे रमण करें शुभ ध्यान।।३।।

• श्री वीर विभु दिनचर्या •

मूलसूत्रम्—

**णो सुकरमेयमेगेसिं, णाभिभासे य अभिवाय माणे।
हयपुव्वे तत्थ दंडेहिं, लूसियपुव्वे अप्पपुण्णेहिं।।**

पद्यमय भावानुवाद—

लाखों वन्दन कर रहे, उनसे करें न बात।
ऐसी रहनी सरल नहिं, कठिन मार्ग सिद्धान्त।।१।।

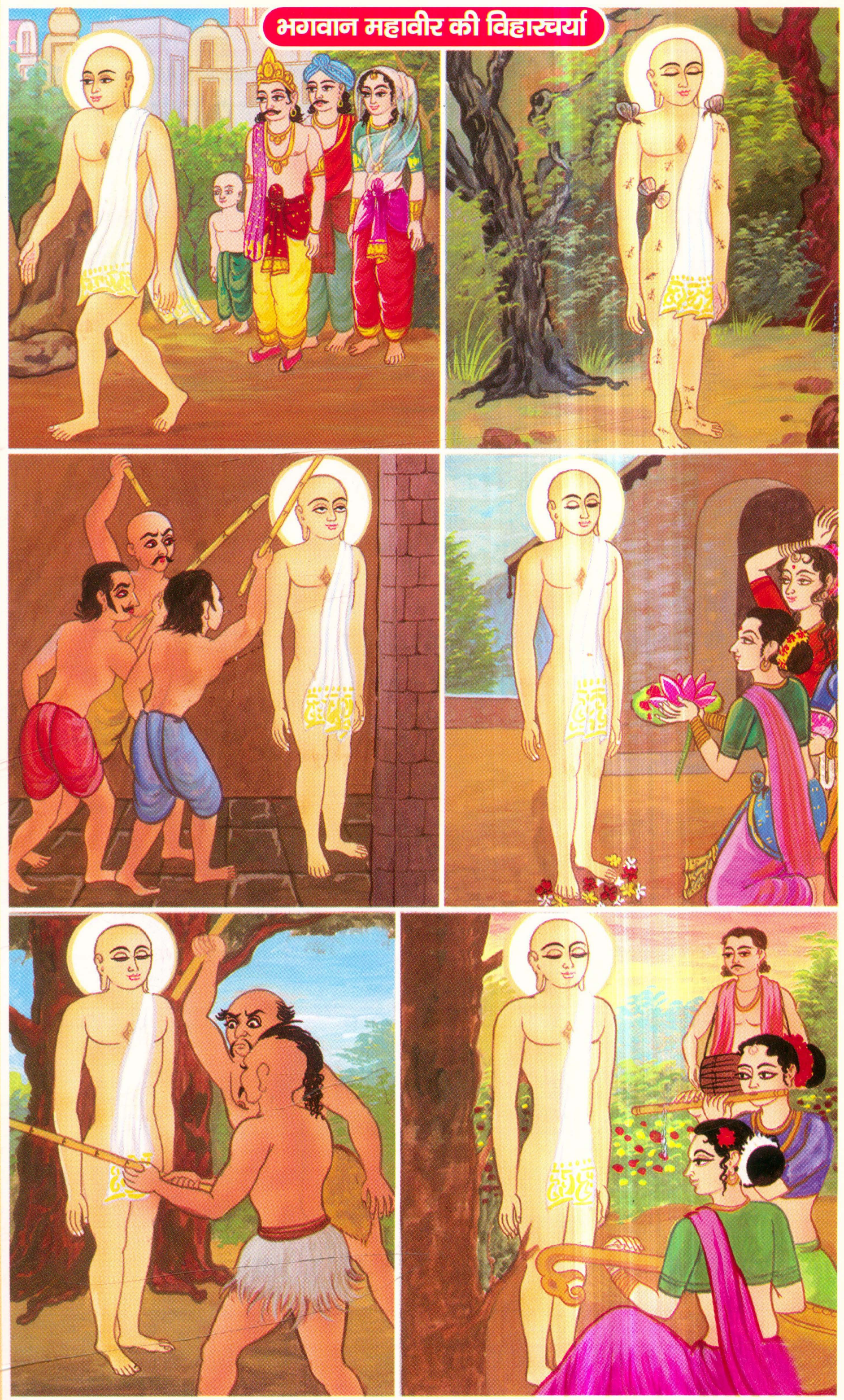
भगवान महावीर की विहारचर्या

भगवान महावीर की विहार चर्या

1. भगवान महावीर हेमन्त ऋतु में दीक्षित हुए। उन्होंने कंधे पर डाले हुए वस्त्र को निर्लिप्त भाव से धारण किया था। अपने स्वजन-परिजनों को छोड़कर तत्काल क्षत्रियकुण्ड से विहार कर गये।

2. दीक्षा के समय भगवान के शरीर पर सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन आदि लगा था। मधुमक्खी, भ्रमर आदि अनेक क्षुद्र प्राणी उससे आकृष्ट हो शरीर पर डंक मारते, खून पीते, माँस नोंच लेते। यह क्रम चार मास से अधिक समय तक चलता रहा।

3. भगवान एक-एक प्रहर तक तिरछी दीवार पर आँखें टिकाकर अन्तरात्मा में ध्यान करते थे। उनकी विस्फारित आँखें देखकर भयभीत हुए लोग चिल्लाते, उन पर डण्डों आदि से प्रहार करते।

4. भगवान को एकान्त में खड़ा देखकर कुछ कामुक स्त्रियाँ उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनसे भोग प्रार्थना करतीं। तब प्रभु ध्यान में गहरे प्रविष्ट हो जाते।

5. भगवान को ध्यानस्थ देख कुछ लोग उनका अभिवादन करते तो कुछ डण्डों से पीटने लगते। कुछ लोग उन्हें प्रसन्न करने के लिये वीणा आदि बजाते किन्तु प्रभु सबसे निरपेक्ष रहकर अपने ध्यान में स्थिर रहते।

दुष्ट लोग दंडित करें, छेदन-भेदन मार।
कहा सरल यह भावना, होत न द्वेष विकार।।२।।

● एकत्व भावना ●

मूलसूत्रम्—

एगत्तगए पिहियच्चे।

पद्यमय भावानुवाद—

भाये एकत्व भावना, क्रोधानल हो शान्त।
बस इतनी-सी बात से, पाये अविचल प्रान्त।।

● कर्म चमत्कार ●

मूलसूत्रम्—

अदु थावरा य तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए।
अदुवा सव्व जोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढ़ो बाला।।

पद्यमय भावानुवाद—

अपने कर्म प्रभाव से, स्थावर भव प्रकटाय।
यों ही कर्म प्रभाव से, त्रस काया पा जाय।।१।।

जानो कर्म प्रभाव से, सर्व योनि अवतार।
नानाविध हो भव-भ्रमण, परिवर्तन संसार।।२।।

● त्रिविध दुरित त्याग ●

मूलसूत्रम्—

भगवं च एवमण्णेसिं, सोवहिए हु लुप्पइ बाले।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडियइक्खे पावगं भगवं।।

पद्यमय भावानुवाद—

महावीर भगवन्त ने, सम्यक् समझ-विचार।
निश्चय बाल उपधि युक्त, पाते क्लेश अपार।।१।।

त्याग दिया पातिक कर्म, ज्ञातपुत्र भगवन्त।
सर्वकर्म का मूल यह, जाना सम्यक् सन्त।।२।।

• आत्मदर्शी •

मूलसूत्रम्—

जस्सित्थिओ परिण्णाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खू।

पद्यमय भावानुवाद—

काम-भोग जड़ पाप की, जानें त्रिशलानंद।
विषय बढ़ाती कामिनी, त्यागा नारी-फन्द।।

• आहार विवेक •

मूलसूत्रम्—

अहाकडं ण से सेवे सव्वसो कम्मुणा य अदक्खू।
जं किंचि पावगं भगवं तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

दोषयुक्त आहार है, कर्मबंध का हेतु।
कल्पनीय आहार बिन, मिले न साधन-सेतु।।१।।

त्याज्य अशन है दोष युत, हो अघ आधा कर्म।
महावीर प्रभु जानते, शुद्ध अशन का मर्म।।२।।

आधाकर्मी दोष का, करे श्रमण परिहार।
मुनि '**सुशील**' प्रासुक अशन, जिनशासन व्यवहार।।३।।

• आहार की मात्रा •

मूलसूत्रम्—

मायण्णे असण पाणस्स।

पद्यमय भावानुवाद—

कितना भोजन चाहिए, रखते जिनवर ध्यान।
नहीं अधिक परिमाण से, अशन लिया भगवान।।१।।

शुद्ध अशन परिमाण का, रखते थे प्रभु ख्याल।
डट-डटकर भोजन करें, मुनि 'सुशील' इस काल।।२।।

दूसरा उद्देशक

• शयन और आसन •

मूलसूत्रम्—

चरियासणाइं सेज्जाओ एगतियाओ जाओ बूइयाओ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं जाइं सेवित्था से महावीरे।।

पद्यमय भावानुवाद—

निज आँखों देखा कहा, करके पिछला याद।
जम्बू और सुधर्म का, चलता यह संवाद।।१।।

कहे आपने एक दिन, आसन शय्या-वास।
आज पुनः बतलाइए, नाम वास कुछ खास।।२।।

मूलसूत्रम्—

आवेसण-सभा-पवासु पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियाट्ठाणेसु पलालपुंजेसु एगदा वासो।।

आगंतारे आरामागारे नगरे वि एगया वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा रुक्खमूले वि एगया वासो।।

पद्यमय भावानुवाद—

कहें सुधर्मा शिष्य से, सुन जम्बू धर ध्यान।
सोये-बैठे किस तरह, महावीर भगवान।।१।।

एक जगह ठहरे नहीं, महावीर भगवान।
धर्मशाल अरु खण्डहर, या फिर कभी दुकान।।२।।

लुहार आदि के कर्मगृह, सोनी और सुथार।
छप्पर नीचे भी सहीं, शीतल तप्त बयार।।३।।

पथिक-वास विश्रामगृह, नगर या कि हो ग्राम।
सूने घर मरघट कभी, या तरु नीचे ठाम।।४।।

मूलसूत्रम्—

एएहिं मुणी सयणेहिं समणे आसि पतेरसवासे।
राइ दिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाइ।।

पद्यमय भावानुवाद—

महाश्रमण इन वास गृह, बीता साधन काल।
संयत-स्थिर रात-दिन, अविचल मन की चाल।।१।।

साढ़े बारह वर्ष अरु, संग दिवस दस-पाँच।
डूबे रहते ध्यान में, सुन जम्बू यह साँच।।२।।

• अति निद्रा निषेध •

मूलसूत्रम्—

णिद्दं पि णो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए।
जग्गावइ य अप्पाणं, ईसिं य अपडिण्णे।।

पद्यमय भावानुवाद—

महावीर भगवन्त ने, निद्रा लीन्ही अल्प।
रात-दिवस जागृत रहे, नहिं सोना ही कल्प।।१।।

कभी सताये नींद तो, खड़े हुए तत्काल।
रहे अहर्निश ध्यान में, जिसकी नहीं मिसाल।।२।।

• निद्रा विजय •

मूलसूत्रम्—

संबुज्झमाणे पुणरवि आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ बहिं चंकमिया मुहुत्तागं।।

पद्यमय भावानुवाद—

सतत ध्यान के कारणे, निद्रा लीन्हीं जीत।
निद्रा-विजयी वीर प्रभु, वर्षा हो या शीत।।१।।

क्षणभर को ही नींद ले, जगकर करते ध्यान।
पल दो पल को घूमकर, आ बैठें भगवान।।२।।

• उपसर्ग-उत्पात •

मूलसूत्रम्–

सयणेहिं तस्सुवसग्गा भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा अदुवा पक्खिणो उवचरंति।।

अदु कुचरा उवचरंति गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा इत्थी एगतिया पुरिसा य।।

पद्यमय भावानुवाद–

क्या बीते प्रभु वीर पर, ध्यान-विघ्न उत्पात।
वीर सहे उपसर्ग सब, सुन लो जम्बू तात।।१।।

डूबे हों जब ध्यान में, महाश्रमण प्रभु वीर।
नकुल-सर्प काटें उन्हें, तबहु न व्यापी पीर।।२।।

आमिष-भोजी गिद्ध भी, नोंचे उनका माँस।
सहनशील थे गजब के, नहिं पीड़ा की साँस।।३।।

नर-तन-धारी दुष्ट भी, करते अति उत्पात।
अस्त्र-शस्त्र ले हाथ में, फिर-फिर करते घात।।४।।

कोतवाल इनमें रहें, और ग्राम के रक्षक।
रक्षक ही थे बन गये, महाश्रमण के भक्षक।।५।।

काम पीड़िता नारियाँ, आतीं प्रभु के पास।
वे भी पीछे नहिं रहीं, देतीं प्रभु को त्रास।।६।।

• स्थान परीषह विजय •

मूलसूत्रम्–

इहलोइयाइं परलोइयाइं भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भिगंधाइं सद्दाइं अणेगरूवाइं।।

पद्यमय भावानुवाद–

पशु-पक्षी नर लोक के, और देव सुरलोक।
सब कष्टों में सम रहे, नहीं हर्ष नहिं शोक।।१।।

द्वन्द्वों के इस जगत् में, चीजें इष्ट-अनिष्ट।
कटुवाणी निन्दा वचन, स्तुति वाणी मिष्ट।।२।।

फूल-शूल दुर्गंध सँग, सुखकर गन्ध सुगन्ध।
सब में समता-रमण प्रभु, नहिं द्वन्द्वों के बंध।।३।।

मूलसूत्रम्—

अहियासए सया समिए फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभिभूय रीयइ माहणे अबहुवाई।।३३।।

पद्यमय भावानुवाद—

समिति-युक्त होकर रहे, सम्यक् वृत्ति-प्रवृत्ति।
थे सहनशील स्पर्श बहु, अरु थी पूर्ण विरक्ति।।१।।

जीत लई थी अरति-रति, महमाहन प्रभु वीर।
अल्प-स्वल्प वे बोलते, मनहु क्षमा तसवीर।।२।।

मूलसूत्रम्—

स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु एगचरा वि एगदा राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे।।३४।।

पद्यमय भावानुवाद—

खड़े अकेले ध्यान में, आकर देखें लोग।
भाँति-भाँति के प्रश्न कर, करें विघ्न संयोग।।१।।

कभी रात में आय के, लोग पूछते कौन।
यहाँ खड़े क्यों शून्य में, प्रभु का उत्तर मौन।।२।।

चिढ़ जाते थे लोग तब, करते प्रभु पर क्रोध।
और पीटते थे उन्हें, नहिं प्रभु में प्रतिशोध।।३।।

मूलसूत्रम्—

अयमंतरंसि को एत्थ अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे तुसिणीए सकसाइए झाति।।३५।।

पद्यमय भावानुवाद—

(गीतिका)

बाहर पूछा कभी किसी ने, कौन खड़ा है भीतर।
मैं अनिकेती भिक्षु श्रमण हूँ, दिया स्वल्प यह उत्तर।।१।।

भागो चलो यहाँ से जाओ, त जाते प्रभु चुपचाप।
क्रोध-बोध का लेश न उनमें, कि रमण आपु में आप।।२।।

• शीत-कष्ट विजेता महावीर •

मूलसूत्रम्—

जंसिप्पेगे पवेयंति सिसिरे मारुए पवायंते।
तंसिप्पेगे अणगारा हिमवाते णिवायमेसंति।।

संघाडीओ पविसिस्सामो एहा य समादहमाण।
पिहिया वा सक्खामो 'अतिदुक्खं हिमग-संफासा'।।

तंसि भगवं अपडिण्णे अहे वियडे अहियासए दविए।
णिक्खम्म एगया राओ चाएइ भगवं समियाए।।

पद्यमय भावानुवाद—

बजें दाँत से दाँत अरु, शीत कँपाये गात।
ठिठुराये शीत बयार, शिशिर शीत विख्यात।।१।।

तब कहे गृही की कौन, ठिठुराते अनगार।
वे खोजें ऐसी आड़, लगे न शीत बयार।।२।।

साधु-संत तब सोचते, कैसे करें बचाव।
कंबल में घुस जायेंगे, या फिर जले अलाव।।३।।

छन्द कुंडलिया

गाढ़े शीत बचाव का, सोचा नहीं जुगाड़।
समता में सर्दी सहें, घर जो बिना किवाड़।।
घर जो बिना किवाड़, हवा चलती बर्फीली।
डिगे न प्रभु का धीर, डिगाये ठंड हठीली।।

बढ़े रात को शीत, खुले मण्डप में ठाडे।
कहते '**सूरि सुशील**' वीर समता में **गाढ़े**।।१।।

।। छन्द दोहा।।

मण्डप से बाहर चलें, टहलें क्षणभर तात।
बढ़ता जाता शीत भी, ज्यों-ज्यों बढ़ती रात।।२।।

विन कपाट मण्डप रहें, आत्मध्यान में लीन।
शीत-विजय-प्रभु वीर सी, पहले कभी सुनी न।।३।।

• समापन •

मूलसूत्रम्—

एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयंति।।३९।।

पद्यमय भावानुवाद—

कहता हूँ ऐसा कि मैं, सुन जम्बू धर ध्यान।
महर्षि कश्यप गोत्र के, महावीर मतिमान।।१।।

शीत-सहन की यह विधा, दुहराई बहुबार।
अब उपसर्ग अनार्य भू, जहँ के नर अनुदार।।२।।

तीसरा उद्देशक

• उत्तम तितिक्षा साधना •

मूलसूत्रम्—

तणफासे सीयफासे य तेउफासे य दंस-मसगे य।
अहियासए सया समिए फासाइं विरूवरूवाइं।।

अह दुच्चरलाढमचारी वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च।
पंतं सेज्जं सेविंसु आसणगाइं चेव पंताइं।।

छन्द कुंडलिया

लाढ़ देश जाते हुए, पथ-उपसर्ग अपार।
कंटक-कंकड़-घास मग, ठंडी-गरम बयार।।
ठंडी-गरम बयार, काटते डाँस नुकीले।
इत काँटों की चुभन, और मच्छर जहरीले।।
यह विहार का कष्ट, प्रभु सहनशील थे गाढ़।
जहँ थे ये उपसर्ग, वह देश कहाये लाढ़।।१।।

।। छन्द दोहा ।।

भूमि वज्र और शुभ्र थी, दुर्गम-अगम प्रदेश।
इसी क्षेत्र में कर गये, त्रिशलानंद प्रवेश।।२।।

मूलसूत्रम्—

लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवतिंसु।।

।। सोरठा ।।

निष्ठुर थे सब लोग, रूखा-सूखा अशन था।
त्यागे थे प्रभु भोग, नहि मिलता तो भी कुशल।।१।।

।। दोहा ।।

श्वान शिकारी काटते, इधर-उधर से दौड़।
डंडे मारें दुष्ट जन, कष्ट सहे हर मोड़।।२।।

मूलसूत्रम्—

अप्पे जणे णिवारेइ लूसणाए सुणए डसमाणे।
छुच्छुकारेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति।।

पद्यमय भावानुवाद—

कुछ जन कुत्ते रोकते, बहुजन दे छुछकार।
अनार्य जन करते यही, उन्हें पुकार-पुकार।।

मूलसूत्रम्—

एलिक्खए जणे भुज्जो बहवे वज्जभूमि फरूसासी।
लट्ठिं गहाय णालीयं समणा तत्थ एव विहरिंसु।।

पद्यमय भावानुवाद—

छह महिने विचरे प्रभो, वज्रभूमि के देश।
अन्य श्रमण लाठी रखें, नहिं कुत्तों का क्लेश।।

मूलसूत्रम्—

एवं पि तत्थ विहरंता पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं।
संलुंचमाणा सुणएहिं दुच्चरगणि तत्थ लाढेहिं।।

पद्यमय भावानुवाद—

लाठी वाले श्रमण भी, बच नहिं पाते तात।
उनको भी वे काटते, करते उन पर घात।।

मूलसूत्रम्—

णिहाय डंडं पाणेहिं तं कायं वोसज्ज मणगारे।
अह गामकंटए भगवं ते अहियासए अभिसमेच्चा।।

पद्यमय भावानुवाद—

मन-वाणी अरु कर्म का, तीन योग प्रतिकार।
कभी न दीन्हा दण्ड प्रभु, यद्यपि सहे प्रहार।।

मूलसूत्रम्—

णागो संगामसीसे वा पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं अलद्धपुव्वो वि एगया गामो।।

पद्यमय भावानुवाद—

युद्ध-भूमि से नहिं हटे, घायल हो गजराज।
मथ-मथ मारे सैन्यदल, होता गज पर नाज।।१।।

उसी तरह उपसर्ग दल, जीते थे प्रभु वीर।
परीषहों से नहिं डिगे, धीर-वीर-गंभीर।।२।।

कभी न मिलता वास तो, नगर ग्राम दें छोड़।
जा रहते वन खण्ड में, पुर से नाता तोड़।।३।।

मूलसूत्रम्—

उवसंकमंतमडिण्णं गामंतियं पि अपत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिंसु एत्तातो परं पलेहि त्ति।।

पद्यमय भावानुवाद—

क्या खायें अरु कहँ रहें, किया न यह संकल्प।
वास-अशन हित जाय जब, देख वक्त का कल्प।।१।।

जब पहुँचे पुर के निकट, लोग करें उत्पात।
जाओ भागो क्यों खड़े, कहें और लतियात।।२।।

मूलसूत्रम्—

हयपुव्वो तत्थ डंडेणं अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंताइ फलेणं।
अदु लेलुणा कवालेणं हंता हंता बहवे कंदिंसु।।

पद्यमय भावानुवाद—

डण्डे-मुक्के-भल्ल से, मारें दुष्ट कुजात।
कि शस्त्र अरु ढेला कभी, किंचित् नहीं लजात।।

मूलसूत्रम्—

मंसाणि छिन्नपुव्वाइं उट्ठभंति एगयाइं कायं।
परिस्सहाइं लुंचिसु अदुवा पंसुणा अवकरिंसु।।

उच्चालइयं णिहणिंसु अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकाए पणयासी दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने।।

पद्यमय भावानुवाद—

मार-पीट कर बोलते, मारो-मारो नंग।
सहें परीषह विविध विध, हिय में क्षमा-तरंग।।१।।

महावीर की देह से, नोंचा मांस अनार्य।
खड़े ध्यान में वीर प्रभु, यह पहले का कार्य।।२।।

अब ये भूकें देह पर, कभी फेंक दें धूल।
सहनशील प्रभु वीर को, लगें शूल भी फूल।।३।।

बैठें जब प्रभु ध्यान में, ऊँचा देत उछाल।
फिर पटकें नीचे उन्हें, देर नहीं तत्काल।।४।।

किन्तु प्रतिज्ञाबद्ध थे, महावीर भगवान।
अतः न डिगते थे कभी, सहनशील मतिमान।।५।।

मूलसूत्रम्—

सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणो फरूसाइं अचले भगवं रीइत्था।।

एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयंति।।

पद्यमय भावानुवाद—

समर भूमि योधा लड़े, कवच पहनकर वीर।
पहने संवर का कवच, इधर डटे प्रभु वीर।।१।।

निश्चल रहकर ध्यान में, जीते कष्ट अपार।
अविचलता ले जा रही, भवसागर के पार।।२।।

ऐसा कहता मैं सुनो, तुम जम्बू धर ध्यान।
मुक्त प्रतिज्ञा से रहे, महावीर मतिमान।।३।।

चौथा उद्देशक

• चिकित्सा परिहार •

मूलसूत्रम्—

ओमोदरियं चाएति अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा णो से सातिज्जती तेइच्छं।।

पद्यमय भावानुवाद—

स्वस्थ निरोगी थे यदपि, तो भी अल्पाहार।
तप जीवन का अंग था, औषध का परिहार।।

मूलसूत्रम्—

संसोहणं च वमणं च गायब्भंगणं सिणाणं च।
संबाहणं न से कप्पे दंतपक्खालणं परिण्णाए।।

पद्यमय भावानुवाद—

वमन-विरेचन परिकर्म, मदर्न-मज्जन-त्याग।
मंजन दाँतों का नहीं, नहीं देह-अनुराग।।

मूलसूत्रम्—

विरते य गामधम्मेहिं रीयति माहणे अबहुवादी।
सिसिरंपि एगदा भगवं छायाए झाइ आसी य।।

पद्यमय भावानुवाद—

इन्द्रिय-विषयों से विरत, करते विचरण वीर।
शिशिर-शीत छाया रहें, हुए न कभी अधीर।।१।।

मौन रहें बोलें नहीं, परमहंस अवधूत।
जब भी बोलें बहुत कम, वे त्रिशला के पूत।।२।।

• तप एवं आहार •

मूलसूत्रम्—

आयावई य गिम्हाणं अच्छइ उक्कुडए अभिवाते।
अदु जावइत्थं लूहेणं ओयण-मंथु-कुम्मासेणं।।

पद्यमय भावानुवाद—

गरमी लें आतापना, उकडू आसन तात।
सम्मुख सूरज लू चलें, कभी नहीं अकुलात।।१।।

स्वादहीन आहार लें, रूखा-सूखा उड़द।
या सत्तू लें अल्प ही, वह भी लेयँ न जल्द।।२।।

मूलसूत्रम्—

एयाणि तिण्णि पडिसेवे अट्ठ मासे अ जावए भगवं।
अपिइत्थ एगया भगवं अद्धमासं अदुवा मासं पि।।

अवि साहिए दुवे मासे छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता।
रायोवरायं अपडिण्णे अण्णगिलायमेगया भुंजे।।

पद्यमय भावानुवाद—

इस क्रम के आहार से, बीते महिने आठ।
पिया न पानी वीर ने, तप का अद्भुत ठाठ।।१।।

एक पक्ष या मास इक, वे नहिं पीते नीर।
घोर तपस्वी वीरवर, तन-मन से बे पीर।।२।।

दो महिने छह मास तक, नहिं पीते वे नीर।
रात-रातभर जागते, त्रिशला-सुत प्रभु वीर।।३।।

मूलसूत्रम्—

छट्ठेणं एगया भुंजे अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेण एगया भुंजे पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे।।

पद्यमय भावानुवाद—

तप उनका क्रमश: चला, छट्ठ-अट्ठ अरु चोल।
पंचोले बारह दिवस, चोले दस दिन बोल।।१।।

नहिं संकल्प अहार का, थे समाधि में लीन।
तपमय जीवन वीर का, तप-समाधि ही दीन।।२।।

मूलसूत्रम्—

णच्चाणं से महावीरे णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वि ण कारियत्था कीरंतं पि णाणुजाणित्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

करुँ-कराऊँ पाप नहिं, अनुमोदन भी त्याग।
तीन तरह से अघ विरत, ऐसे थे बड़भाग।।

मूलसूत्रम्—

गामं पविस्स णगरं वा घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं आयतजोगयाए सेवित्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

करें एषणा अशन की, ग्राम-नगर के माहिं।
बनी रसोई गृहस्थ हित, उसी अन्न को खाहिं।।९।।

शुद्ध-विशुद्ध आहर ही, लेते थे प्रभु वीर।
संयम विधि भोजन करें, सत्तू हो या खीर।।१०।।

मूलसूत्रम्—

अदु वायसा दिगिंछत्ता जे अण्णे रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठंते सययं णिवतिते य पेहाए।।

अदु माहणं व समणं वा गामपिंडोलगं च अतिहिं बा।
सोवागं मूसियारं वा कुक्कुरं वा वि विहं ठियं पुरतो।।

वित्तिच्छेदं वज्जंतो तेसऽप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं अहिंसमाणो घासमेसित्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

(छन्द गीतिका)

मिलें मार्ग में पशु-पक्षी तब, जब भिक्षा को जाते।
बैठे मिलते काग या कि फिर, प्यासे जीव लखाते।।१।।

कि भिक्षुक-भिक्षु-अतिथि आदि भी, मग में सब दिख जाते।
बिल्ली-कुत्ते दिखें मार्ग में, प्रभु नहिं दूर भगाते।।२।।

कि प्रभु को देख उड़ें न ये सब, अतः कि धीरे चलते।
हो न किसी को त्रास कि उनसे, अनुकंपा उर रखते।।३।।

।। दोहा ।।

प्रभु आहार गवेषणा, अनुकंपा से पूर।
बसी अहिंसा योगत्रय, थे प्रभु करुणा भूर।।४।।

मूलसूत्रम्—

अवि सुइयं व सुक्कं वा सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बक्कसं पुलागं वा लद्धे पिंडे अलद्धए दविए।।

पद्यमय भावानुवाद—

चाहे जैसा अशन हो, जो मिलता सो खात।
षट्रस व्यंजन या कि फिर, ठंडा बासी भात।।१।।

पूरा या आधा मिले, या नहिं मिलता स्वल्प।
राग-द्वेष से रहित प्रभु, यही अशन का कल्प।।२।।

• ध्यान-साधना •

मूलसूत्रम्—

अवि झाति से महावीरे आसणत्थे अकुक्कुए झाणं।
उड्ढं अहे य तिरियं च पेहमाणे समाहिमपडिण्णे।।

पद्यमय भावानुवाद—

उकडू गोदोहन कहें, उस आसन में ध्यान।
स्थिर स्थित बैठते, महावीर भगवान।।१।।

ऊँचे-नीचे लोक में, जीव आदि थे लक्ष्य।
आत्म-समाधि डूबे रहे, राग-द्वेष कर भक्ष्य।।२।।

मूलसूत्रम्—

अकसायी विगयगेही य सद्द-रूवेसुऽमुच्छिए झाति।
छउमत्थे वि परक्कममाणे ण पमायं सइं पि कुव्वित्था।।

पद्यमय भावानुवाद—

क्रोध आदि से मुक्त हो, आसक्ति से हीन।
डूबे रहते ध्यान में, गहरे जल ज्यों मीन।।१।।

छद्‌म अवस्था प्रभु रहे, मुझको है यह याद।
एक बार कीन्हा नहीं, प्रभु ने कभी प्रमाद।।२।।

मूलसूत्रम्—

सयमेव अभिसमागम्म आयतजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समिआसी।।६९।।

पद्यमय भावानुवाद—

संयत मन-वच-काय से, किये कषाय उपशान्त।
समिति-गुप्ति से युक्त हो, सदा रहे निर्भ्रान्त।।१।।

आत्म-शुद्धि की साधना, की जीवन-पर्यन्त।
ध्यान-योग अद्‌भुत रहा, महाश्रमण प्रभु संत।।२।।

उनकी जो साधन विधा, की प्रभु ने उपदिष्ट।
कठिन साधना दे गये, श्रमण जनों को इष्ट।।३।।

।।इति श्री आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का
पद्यमय भावानुवाद पूर्ण हुआ।।

मंगलमय-प्रशस्ति

पाण्डव समिति गगन भुजा[1], थिर कारक शनिवार।
माघ धवल तिथि चार दश, जय-जय मंगलचार।।१।।

श्री अष्टापद तीर्थपति, **श्री आदिनाथ** भगवन्त।
अंजनशलाका-प्रतिष्ठा, '**रानीपुर**' दीपन्त।।२।।

लुप्त तीर्थ अति समय से, प्रकट हुआ कलिकाल।
भरतदेश सौभाग्य यह, होंगे भव्य निहाल।।३।।

चमत्कार हो रात-दिन, हो अनुभव प्रत्यक्ष।
इष्टायक जागृत सदा, दर्शन कर लो दक्ष।।४।।

अहो जिनालय मध्य में, बरस रही अमि धार।
मनहुँ देवघन अभिषेक, करने को तैयार।।५।।

शानदार संतोषमय, सुरपुर दृश्य ललाम।
अहो प्रतिष्ठा हो रही, '**रानीपुर**' सुख-धाम।।६।।

युगप्रधान आचार्य सम, शासन शुभ सम्राट्।
श्रीमद् '**विजय नेमि सूरीश्वर**' वन्दन कोटि अपार।।७।।

शास्त्र विशारद कविरत्न, साहित्य शुभ सम्राट्।
व्याकरणे वाचस्पति, '**लावण्य**' सूरि विख्यात।।८।।

शास्त्र विशारद संयमी, व्याकरण रत्न महान्।
काव्य दिवाकर '**दक्ष सूरि**', मम अग्रज विद्वान्।।९।।

सूरि '**सुशील**' सौभाग्य से, इनका मिला प्रभाव।
जिससे नव-नव कार्य हो, सूरि 'सुशील' अति चाव।।१०।।

सूरि '**जिनोत्तम**' शिष्यमणि, इनका अति सहयोग।
श्री आचारांगसूत्र पर, लिखे पद्य उपयोग।।११।।

1. २०५५

परम पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय जिनोत्तम सूरीश्वर जी
लिखित-सम्पादित-संकलित साहित्य

...कजी म. सा. द्वारा
...त्य

रचयिता

।। नमामि सादरं सुशील सूरीशं ।।

जहां श्री सुशील गुरू की महेर है।
वहां सदा लीला लहेर है।

श्रुतज्ञान प्रकाशन सहयोग

वर्तमान गच्छाधिपति

प. पू. आचार्य
श्री अरिहन्त सिद्ध सूरि. जी म. सा.

जिनशासन प्रभावक - वर्तमान गच्छाधिपति **प. पू. आचार्य देव श्रीमद् विजय अरिहन्त-सिद्ध सूरीश्वर जी म.सा.** के आज्ञानुवर्त्तिनी-गोडवाड दिपीका-तपस्वीरत्ना **पू. साध्वी श्री ललितप्रभाश्री जी म. सा.** की शिष्या श्री वर्धमान तपाराधिका **पू. साध्वी श्री स्नेहलताश्री जी म.** की शिष्या श्री वर्धमान तपाराधिका **पू. साध्वी श्री भव्यगुणाश्री जी म.** श्री वर्धमान तपाराधिका **पू. साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञाश्री जी म.** (पूज्य माताजी महाराज) श्री वर्धमान तपाराधिका **पू. साध्वी श्री शीलगुणाश्री जी म.** आदि श्रमणी परिवार ठाणा-25 की पावन प्रेरणा से-

पू. साध्वी श्री भव्यगुणा श्रीजी म.

- श्री विशाखापट्नम् (A.P.) जैन संघ की श्राविका ब्हेनों
- श्री विजयवाड़ा (A.P.) जैन संघ की श्राविका ब्हेनों
- श्री नेल्लोर (A.P.) जैन संघ की श्राविका ब्हेनों
- शा. समरथमल एण्ड कं, विजयवाड़ा द्वारा निर्मित श्री कुन्थुनाथ गृहमन्दिर, ज्ञानखाता

पू. साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञा श्रीजी म.

- श्रीमती विमला ब्हेन छगनलालजी, जावाल (विजयवाड़ा) के द्वारा **ज्ञानखाता** की रकम से प्रकाशन सहयोग प्राप्त हुआ है। सुकृत के महान लाभ की **हार्दिक अनुमोदना** के साथ श्री संघ व लाभार्थीयों को हार्दिक धन्यवाद।

पू. साध्वी श्री शीलगुणा श्रीजी म.

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर (राज.)

प्रेरणादाता- श्रमणीवृन्द